Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मेहनत और ईमानदारी के बजाय आज मुफ्तखोरी की हिमायत क्यों की जाती है? ऐसा कौन करता है. . .और क्यों. . .?

**जीवन में धर्म और कर्म के बीच श्रम की गुणवत्ता को पहचानने के लिए पढ़िए. . .**

- **मुद्राराक्षस** की कहानी—**दुर्घटना**
- **स्वदेश दीपक** की कहानी—**मुस्कान**
- **रमेश उपाध्याय** की कहानी—**बोझ**
- **विजयकिशोर मानव** की कहानी—**मुर्दाखोर**

# अगला अंक

**▣ युवालेखन कहानी प्रतियोगिता**

—**शंकर** की कहानी—**ठिकाने**

**▣ आते हुए लोग**

— **हिमानी भट्ट** की कहानी—**और कल?**

**▣ अमरीकी कथा-साहित्य**

— **सॉल बेलो** की कहानी—**मिस्टर ग्रीन को ढूंढते हुए**

**▣ तमिल कथा-साहित्य**

— **आदवन सुंदरम्** की कहानी—**सौवीं रात**

**▣ कहानी कहां बनती है. . .**

— कहानी और कहानीकारों की रचनाधर्मिता के संदर्भ में आलोचना और आलोचक की स्थिति को रेखांकित करती, विशेष रूप से 'सारिका' के लिए की गयी— **डा. नामवर सिंह से डा. विजय मोहन सिंह** की बहस तलब विचारोत्तेजक बातचीत

**▣ स्मृति स्क्रीन पर. . .**

— **डा. रघुराज गुप्त** का व्यक्ति चित्रात्मक संस्मरण—**वली अहमद से खिताब**

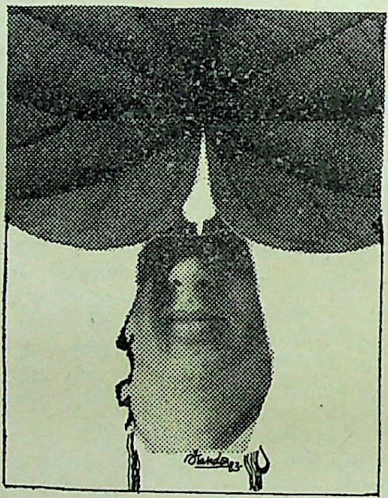

**▣ तुलसी दास चंदन घिसैं!**

— पर्दे के राम और अयोध्या—**इस** बार हरिशंकर परसाई तुलसी के **बाने** में दक्षिण भारत जाकर, **मुलाकात** कर रहे हैं—नंबूदरीपाद से **और फिर** महाराष्ट्र पार हिंदी क्षेत्र के छात्रों **और** अध्यापकों की दुनिया में.

**▣ मथुरादास की डायरी**

— आलोचना की सुखद स्थिति **का** लाभ उठाकर, आलोचक **बनने की** तैयारी में जुटे मथुरादास की **डायरी** का अगला महत्वाकांक्षी पन्ना—

**▣ गलियां : जहां इतिहास कैद है!**

— टक्कर बादशाह अकबर **और** फौलाद सिंह की कि कैसे एक **गुमनाम** आदमी ने जाने-माने बादशाह को **सबक** सिखाया कि बहू-बेटियों की रक्षा **करना** सबका साझा कर्त्तव्य होता है!

**▣ और भुलाये न बने!**

— आपके जीवन में सहसा **और** अनायास घटी घटनाओं की **हमेशा** याद रह जाने वाली गंध को **फैलाते** सदाबहार संस्मरण.

**▣ भरतमुनि के वंशधर**

— संगीत नाटक अकादमी, **राष्ट्रीय** नाट्य विद्यालय और साहित्य **कला** परिषद आदि संस्थान, नाटक के **संदर्भ** में कितना फर्ज निभाते हैं और **करते हैं** कितनी खाना-पूर्ति?

**आपकी बात, अपनी बात, कथा-सूत्र, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं, गजलें, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, चलते-चलते आदि स्थायी स्तंभों सहित—**

# सारिका

16 से 30 अप्रैल, 1984

**कहानियां – कहानियां – कहानियां – कहानियां – कहानियां**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सारिका


## कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

**वर्ष : २४; अंक : ३५४; १ से १६ अप्रैल, १९८४**


## कहानियां/उपन्यास-अंश


8 कहानी नहीं : **द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'**

16 तुमने कभी क्राइस्ट के बारे में सुना है? (फ्रांसीसी) : **अनातोले फ्रांस**

20 झांकी : **सत्येन कुमार**

30 पाप समर्पित : **अशोक गुप्ता**

45 कितना सच्च, कितना झूठ : **धर्मपाल**

48 क्रेन से उठते हुए : **बाला शर्मा**

53 आठ साल बाद : **महराजकृष्ण काव.**

58 लड़ाई : **देशबंधु**

62 कालोनी में रहना : **मुज्तबा हुसैन**
दशार्क (समापन किस्त) : **जैनेंद्र कुमार**


## लघु रचनाएं


11 उपकृत : **जगदीश कश्यप**

12 महत्व : **गुड्डू गोविंद**

18 ऋण का धंधा : **सुदर्शन वशिष्ठ**

22 पाठ : **हसन जमाल**

24 दानशीलता : **संतोष खरे**



सहायक संपादक :
**अवधनारायण मुद्गल**

उप-संपादक :
**रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, महेश दर्पण**

सज्जा : **सुमिता चक्रवर्ती**

■ आवरण : शिव कुमार


26 गवाही : **राजेंद्र कुमार शर्मा**

32 भेड़िया, कुत्ता और आदमी : **विमांशु दिव्याल**

33 एहसास : **विष्णुप्रसाद राजगढ़िया**

34 लघुमानव : **प्रचंड**

44 गरीब : **ऋषि प्रियदर्शी**

47 बोझ : **उर्मिकृष्ण**

51 ब्रह्मज्ञान : **अभिराम**

54 सवाल-जवाब : **चंद्रेश**


## संस्मरण कथा


40 अंधी कर्मनाशा का महसूल : **रामेश्वर शुक्ल अंचल**


## स्थायी स्तंभ


6 **आप की बात**

13 तुलसीदास चंदन घिसैं : **हरिशंकर परसाई**

29 कथासूत्र : **राकेश वत्स**

36 **और भुलाये न बने.**

37 तस्वीर बोलती है : **रघुराय**

56 गलियां जहां इतिहास कैद है : **बाला दुबे**

69 भरतमुनि के वंशधर : **सूत्रधार**

72 **पखवारे की पुस्तकें**

74 **हलचल**



## पाठकों की सुविधा के लिए

**हमें अक्सर पाठकों से शिकायती पत्र मिलते है कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना चंदा आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में दायीं ओर दिये गये कूपन के साथ हमें भेजें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.**

चंदा तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजे :

**सर्कुलेशन मैनेजर,**

**सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया**

**7 बहादुरशाह जफर मार्ग,**

**नयी दिल्ली-110002**

अब चंदे की रियायती दरें हैं :
**वार्षिक : 80 रुपये**
**अर्धवार्षिक : 41 रुपये**

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.
नाम..............
पता..............
..................
हस्ताक्षर............


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## आदमकद चूहे हर कहीं

'सारिका' : अंक 349 आद्यंत पढ़ा. प्रथम दो कहानियों 'चूहा भी हंसता है' एवं 'खिड़की' ने विशेष रूप से प्रभावित किया और अपने आसपास का जायजा लेने, यहां तक कि अपने गिरेबान के अंदर एक बार (संभवतः प्रथम बार) झांक कर देख लेने के लिए बाध्य भी किया. दोनों कहानियों का कथ्य एक ही परिवेश—शिक्षा जगत से लिया गया है, समस्या भी लगभग एक जैसी ही है. आदमकद चूहे दोनों कहानियों में मौजूद हैं, अंतर सिर्फ यही है कि अनत रमेश की कहानी का चूहा अंत में व्यवस्था का मखौल उड़ाते हुए घृणापूर्वक निर्भयता से हंसता है जबकि नासिरा शर्मा के चूहे तथाकथित शराफत का ढोंग ओढ़े कुढ़ते रहते हैं जो अंत में लगभग पूरी तरह टूट चुकने के बाद अपने उन्हीं सजातियों द्वारा चेतते हैं जो किसी भी कीमत पर चूहा बनने को तैयार नहीं हैं.

▣ सिद्धेश्वरसिंह मधुकर, नैनीताल

## चूहा भी, समाज भी

अनत रमेश की कहानी 'चूहा भी हंसता है' बहुत रोचक लगी. समाज व देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद पर लेखक ने बहुत ही रुचिपूर्ण ढंग से, सुव्यवस्थित व पूर्ण नियोजित तीखा व्यंग्य किया है, जो कहानी के धारावारिक रूप से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है. होता भी अक्सर ऐसा ही है. कार्य कोई करता है और नाम किसी और का होता है. जिस प्रकार भारत निर्मित वस्तुओं पर विदेशी छाप लगाकर फायदा उठाया जाता है, उसी प्रकार योग्य व होनहार व्यक्ति को समाज में स्थान मिलता है, जब वह किसी उच्च घराने का व्यक्ति हो अन्यथा उसकी योग्यता, प्रतिष्ठा व स्थान को आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता.

व्यक्ति की सहनशीलता, सीधापन, अहिंसक प्रवृत्ति पर आज का समाज हंसता है. उसे तुच्छ मानता है, क्योंकि उसकी असहाय दशा का फायदा उठाना भी तो समाज का परम धर्म है.

सच्चिदानंद 'धूमकेतु' की 'शेष गांव' कहानी में जमींदारी प्रथा व जातिवाद पर तीखा व्यंग्य किया गया है. स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण के 34 वर्ष बाद भी आज के गांवों की दशा पहले सी यथावत बनी हुई है. वही जातिवाद, वही जमींदारी प्रथा की ज्वलंत घटनाएं आये दिन पढ़ने को मिलती हैं. गांव में जमींदार ही कर्ता-धर्ता व निर्णायक है. ऊंचे सूद पर ऋण देकर कर्जदार की पूरी संपत्ति पर कब्जा कर लेना उनको पूर्वजों द्वारा दी गई विरासत प्रतीत होती है. कहानी का अंतिम छंद अत्यंत लोमहर्षक व बदलती हुई परिस्थितियों का परिचायक है.

▣ गणेश सक्सेना, कोटा (राज.)

## सवाल चंदन और माथे का

'सारिका' अंक 349 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई के स्तंभ 'तुलसीदास चंदन घिसैं' के साथ प्रकाशित यह टिप्पणी कि 'परसाई जी का चंदन सबसे पहले लग रहा है विश्व हिंदी सम्मेलन को,' बड़ी भ्रामक प्रतीत हुई. ऐसा लगा जैसे टिप्पणीकर्त्ता ने परसाई जी के अंक 348 में प्रकाशित स्तंभ को गहराई से न पढ़ा हो. सुरेश उनियाल की कहानी 'किस्सा एक चोर की मौत का' वास्तव में एक अच्छी रचना है और एक निरंतर गिरते हुए राजनैतिक स्तर पर करारी चोट है.

▣ अमितेंद्र नाथ अमित, बांदा

## जैनेंद्र जी की लय

'सारिका' का अंक 349 प्राप्त हुआ. कहानियां सब अच्छी लगीं लेकिन नासिरा शर्मा की 'खिड़की' अधिक पसंद आई. 'चूहा भी हंसता है', 'शेष गांव', 'किस्सा एक चोर की मौत का', 'जंगल में माचिस', 'सबूत' आज की राजनीतिक एवं प्रशासन व्यवस्था पर एक तीखा प्रहार करती हैं. आते हुए लोग में 'सड़क' ने पुलिस की कार-गुजारियों का पर्दाफाश कर दिया है.

जैनेंद्र कुमार का 'दशार्क' एक लय लिए हुए है. लघु कथाएं सुरुचिपूर्ण एवं शिक्षाप्रद है.

▣ सतीश उपाध्याय, मनेंद्रगढ़, सरगुजा

## चंदन उर्फ जड़ों में मट्ठा

'सारिका' के अंक 349 में प्रकाशित परसाई जी की रचना 'तुलसीदास चंदन घिसैं' ने जलते जख्मों पर चंदन ही लगा दिया हो, ऐसा प्रतीत हुआ.

हमारे विचित्र ढंग से विकृत हो रहे सांस्कृतिक मूल्यों पर इन दिनों सामान्यता लोगों की दृष्टि नहीं जाती. सारा ध्यान राजनीति केंद्रित है, और संस्कृति, साहित्य, कला आदि सभी की जड़ों में यह दूषित राजनीति आज मट्ठा ही डालने में लगी है. देश की नवीनतम पीढ़ियों की संस्कृति रक्षा का भार बंबईया सिनेमा तथा आयातित विचारों पर डालकर ही हम निश्चित हैं. क्या आश्चर्य कि आज के कान्वेंट में लाल टाई धारी छात्रों को किसी सामान्य ज्ञान की परीक्षा में अर्जुन के गुरु, कृष्ण की पत्नी, गांधी जी के पिता का नाम बताने के पहले 'इन्हें' 'हू ज़ हू' के पृष्ठ देखने पड़ें! आज के तो युवकों को भी पता नहीं, कि हमारे देश ने स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की!

लॉयन, जेसीज आदि क्लबों की संस्कृति पर परसाई जी सटीक हैं. अंगूठा छाप व्यापारी भी लॉयन क्लब का मेंबर होकर कार के पीछे के शीशे पर एल की चिप्पी लगवाता है, और नाम के आगे लॉयन जोड़ता है! जेसीज कम अवस्था वाले इन के सहवर्गियों से ही भरा है!

सारे देश में एंग्लो इंडियन संस्कृति उभर रही है, जो पता नहीं किधर ले जाकर छोड़ेगी हमें. अंग्रेज तो हम हो नहीं सकते, भारतीय भी नहीं रहेंगे, तो स्पष्ट है, वही त्रिशंकू वाली स्थिति में रहेंगे.

▣ चंद्रमोहन प्रधान, मुजफ्फरपुर-2

## चूहे से सूत्रधार तक

349 अंक पढ़ा. 'सारिका' की समस्त रचनाओं को पहली बार इतनी ईमानदारी से पढ़ा है. कहानी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## तस्वीर बोलती है

सारिका अंक : 349

### पुरस्कार विजेताओं को बधाई

**प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये**

**कुछ कर गुजरने के लिए**
**मौसम नहीं मन चाहिए**

——रमानाथ अवस्थी

▣ परदेशी राम वर्मा, संपदा विभाग, नगर प्रशासन भवन, भिलाई नगर.

**द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये**

**चाहते तो किसी पत्थर की तरह जी लेते**
**हमने खुद मोम की मानिंद पिघलना चाहा.**

——बशर नवाज

▣ सविता, द्वारा श्री मुनीलाल वर्मा, विला, 60 बंटी रोड, बीरयातू, रांची—9

**तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये**

**कुछ जुर्म नहीं इश्क जो दुनिया से छिपायें**
**हमने तुम्हें चाहा है हजारों से कहेंगे.**

▣ विनोद कुमार सिंह, द्वारा श्री रामरूप सिंह, तिलक भवन, पो—झरिया, धनबाद

**प्रशंसित शीर्षक**

**गीत बन कर ही अधर के पास आना चाहता हूं,**
**मैं तुम्हारे प्राण का उच्छवास् पाना चाहता हूं.**

——गुलाब खंडेलवाल

▣ विजय प्रकाश, चास (धनबाद)

**ऐसा लगता है कि उड़कर भी कहां पहुंचेंगे.**
**हाथ में जब कोई टूटा हुआ पर होता है.**
**सैर के वास्ते सड़कों पे निकल आते थे,**
**अब तो आकाश से पथराव का डर होता है.**

——दुष्यंत

▣ विजय सिंह, कांकेर (म.प्र.)

**चलो दुनियां से बगावत कर लें,**
**मिलके दोनों कोई शरारत कर लें,**
**होते हैं नसीब ऐसे लमहें कभी-कभी,**
**थोड़ी हो सही मगर चाहत कर लें.**

▣ शारिक इंदर, चूरू (राजस्थान)

'चूहा भी हंसता है' से सूत्रधार की दिलचस्प मुलाकात तक.

कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानियां मनुष्य के जीवन वृत्त को आंशिक रूप से प्रस्तुत करने में काफी हद तक सफल हैं.

'सारिका' की कहानियों की सबसे प्रमुख विशेषता है—कि वे 'व्यक्ति चरित्र' के अंतर्मन के क्रियाकलापों तथा सूक्ष्म मानसिक संवेदनों को कथारूप देने में सक्षम हैं. इस अंक में कहानी 'खिड़की' में गतिमयता और प्रवाह के साथ रोचकता भी है. 'शेष गांव' कहानी में आज के जटिल और वैविध्यपूर्ण जीवन के कई पक्षों को बखूबी उद्घाटित किया गया है. सुरेश उनियाल की 'किस्सा एक चोर की मौत का' कहानी में राजनीति के गिरते स्तर पर गहरा व्यंग्य है साथ ही विषय शैली को आधुनिक रूप भी दिया है. उपन्यास अंश—'समय चक्र' जीवन के यथार्थ और प्रामाणिक अनुभव प्रसंगों का अच्छा आकलन है. प्रियंवद की कहानी 'दो बूढ़े' सामाजिक संदर्भों तथा व्यक्ति और समाज की विसंगतियों को वास्तविक चित्रण द्वारा प्रस्तुत करने में सफल है. 'खुशी' और 'सबूत' कहानी मानव मन की गहराई में पैठकर मानव के संबंधों, संघर्षों के संकेत सूत्रों को पकड़ने में सफल है.

हरिशंकर परसाई का नियमित सशत व्यंग्य स्तंभ 'तुलसी दास चंदन घिसैं', मथुरादास की डायरी, गलियां : जहां इतिहास कैद है—ये सब आकर्षक हैं जो भुलाये न बनें.

▣ **मंजु विज, लाडपुरा, कोटा**

### अपराध, बारूद बनाम संजीव!

बहुत दिनों के बाद 'सारिका' के इस अंक (349) ने पाठकों के साथ पूरा-पूरा न्याय किया. अंक की सभी कहानियां हिंदी कहानी के भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं. कोई भी कहानी एकदम नकार देने योग्य नहीं है. खटकने वाली बात यह है कि सारिका, जनवरी 80 (पुरस्कार अंक) में एक साथ दो नाम—संजीव और प्रियवंद—अपनी पूरी शक्तिमत्ता के साथ उपस्थित हुए, लेकिन उसके बाद 'बारूद' आदि की संज्ञा से अभिव्यक्त होकर भी संजीव ने 'अपराध' की-सी कथा सामर्थ्य का परिचय नहीं दिया और न प्रियवंद ने भी 'बौसीदनी' की-सी कोई सशक्त रचना पाठकों को दी. 'दो बूढ़े' का अंत निष्कर्ष थोपने की जिस हड़बड़ी में हुआ है, उससे खीझ पैदा होती है, 'शेष गांव' (सच्चिदानंद धूमकेतु) स्वातंत्र्योत्तर भारत में थोड़े बहुत अंतर के साथ अस्तित्वमय सामंती अवशेषों का पता देती है और यह भी कि गोस्वामी जी की दमन नीति ब्राह्मण (हरिनारायण) और दुरुचि (प्रह्लाद) का भेद नहीं मानती. लेकिन कहानी अपने प्रभाव में एकान्वित नहीं है, और क्या स्थितियों के चित्रण भर से लेखकीय कर्म की इति हो जाती है? राजनीतिज्ञ, धनपति, पुलिस व पत्रकार के सहयोग पर आधृत दमन चक्र के पेंचों को खोलती 'सबूत' (चंचल) यद्यपि ठीकठाक कहानी है पर अंचल विशेष की भाषा के अतिरिक्त आग्रह ने कहानी के प्रभाव को कम किया है. 'जंगल में माचिस' (गौरीशंकर नागदंश), 'चूहा भी हंसता है' (अनत रमेश) और नासिरा शर्मा की 'खिड़की' भी अच्छी हैं. हरिपाल त्यागी की 'खुशी' अंक की सबसे प्रभावी कहानी है, अपने गठन में. शुभ संकेत यह कि सभी कहानियां समीष्ट समाज की विषमताओं से टकराती कहानियां हैं.

रघुनाथ प्यासा और हरजीत सिंह की गजलें अच्छी लगीं. सूत्रधार का 'भरतमुनि के वंशधर' स्तंभ अच्छा है. और पत्रांत में अच्छे मुखपृष्ठ के लिए बधाई (!). □

▣ **राजेश कुमार, दिल्ली.**


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कहानी नहीं

▣ द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

संन्यासी ने वह छोटा-सा गोल पत्थर मेरी बेटी के सीने से उठा लिया और तनिक हंसकर मुझसे बोला, "ज्वर उतर गया है."

मैंने उत्सुकता से मीना का हाथ पकड़कर देखा-नाड़ी सचमुच सामान्यगति से चल रही थी.

पिछले तीन दिन से मीना तीव्र ज्वर से आक्रांत थी. कोई भी उपचार कारगर नहीं हो रहा था और उसका कष्ट देख-देखकर हम दोनों स्त्री-पुरुष आकुल थे कि मेरा शिष्य तारादत्त अपने आश्रमवासी संन्यासी को लेकर आ पहुंचा.

संन्यासी ने एक बार झुककर मुझे प्रणाम किया फिर उसने मीना का माथा छुआ और बिना कुछ बोले अपने झोले से एक गोल श्वेत पत्थर निकालकर मीना के सीने पर चिपका के बैठ गया. हम तीनों—मैं, मेरी पत्नी और शिष्य तारादत्त स्तब्ध होकर देखते रहे.

संन्यासी सामने टिक-टिक करती घड़ी पर अपनी नजर किये रहा. ठीक पांच मिनिट बाद उसने पत्थर उठा लिया.

और तब पहली बार संन्यासी ने मेरी पत्नी की ओर देखा और मधुर स्वर में बोला, "मां, इसे अब थोड़ा गरम दूध दो." और इतना कहते-कहते वह उठ खड़ा हुआ, मुझसे बोला, "आज्ञा दीजिए, चलूं मैं."

भाव विह्वल हुई मेरी पत्नी ने कहा उससे, "जरा ठहरिए, भोजन कर के जाइएगा."

संन्यासी खड़ा-खड़ा ही बोला हंसकर, "मैं तो अन्न लेता नहीं हूं मां, यह गाजर लेता आया हूं." झोला छूकर कहा, "आजकल बस गाजर खा रहा हूं."

और उसने एक बार फिर मुझे प्रणाम किया और वह क्षिप्रगति से जीना उतर गया. . .

. . . .दूसरे दिन तारादत्त आया तो मीना पथ्य ले रही थी. तारादत्त को देखते ही कह उठी, "भाई साहब, मेरे लिए तुम आलू-चाप ला दो. अब तो अच्छी हो गयी हूं. आलू-चाप खाने को मेरा जी कर रहा है. जीजी सुन नहीं रही है."

तारादत्त प्यार से बोला, "गुड़िया, मैं स्वामीजी से पूछ कर शाम को तुझे आलू-चाप जरूर ला दूंगा. अभी तो स्वामी जी आश्रम में हैं नहीं, सारनाथ गये हैं."

और तारादत्त ने मुझे बतलाया कि. . .सारनाथ में आजकल कोई तिब्बती विद्वान बौद्ध भिक्षु आये हुए हैं. स्वामीजी प्रतिदिन उनके पास जा रहे हैं. फिर उसने संन्यासी के विषय में मुझे विस्तार से बतलाया कि. . . "वे अनेक भाषाओं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पारंगत हैं. बहुत विस्तृत ज्ञान है उनका. पर वे न कभी किसी को उपदेश देते हैं और न उनकी कोई शिष्य मंडली है, न कभी किसी से एक पैसा लेते हैं, न कहीं भिक्षा स्वीकार करते हैं. अन्न तो खाते नहीं. यही गाजर, मूली, अमरूद, टमाटर. सस्ती से सस्ती चीज खुद ही ले आते हैं और वही खाकर रह जाते हैं. दूध-मलाई कभी छूते भी नहीं. रोज रात को दो-ढाई बजे उठ जाते हैं और गंगास्नान करके लौटकर एकांत कोने में, सूर्योदय होने तक घंटों ध्यानस्थ बैठे रहते हैं. बहुत ही मितभाषी हैं, कभी किसी से कटुवचन नहीं बोलते. आपने देखा न कल, कितनी मधुर वाणी है उनकी. और इतने एक्टिव हैं, इतनी शीघ्रता से हर काम करते हैं, इतना तेज चलते हैं कि कोई अगर साथ-साथ चले तो उसे भागना पड़े पीछे-पीछे. और वे हमेशा पदयात्रा ही करते हैं—सचमुच ही परिव्राजक हैं. अभी दो मास पूर्व हिमालय की तराई से पैदल ही यहां तक आये हैं और अब अगले मास ही काठमांडू चले जायेंगे पैदल-पैदल. और उनकी उमर जानते हैं आप?. . .चौरासी-पचासी साल के हैं."

मेरी पत्नी तब से ध्यानस्थ होकर संन्यासी का वर्णन सुन रही थी. उसने चौंककर कहा, "तू क्या कह रहा है तारादत्त, इतनी उमर तो बिल्कुल नहीं लगती उनकी!"

तारादत्त हंसकर बोला, "मां, वे कोई पाखंडी बाबा नहीं हैं, सचमुच ही दिव्य पुरुष हैं. कोई, वीतराग, योगाभ्यासी. बहुत शक्ति-संपन्न हैं. आश्रम में किसी को भी कोई शारीरिक कष्ट हो तो फौरन उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग जायेंगे और दुखी की सारी व्यथा-वेदना देखते-देखते गायब. कल देखा न तुमने, गुड़िया का बुखार पांच मिनट में हवा हो गया. वह जरा-सा-पत्थर. . .वे उस पर हाथ रक्खे रहे थे न...उनके स्पर्श से ही वह पत्थर सब कुछ करता है."

प्रायः एक सप्ताह बाद, एक अवकाश के दिन, अचानक फिर तारादत्त आ खड़ा हुआ. भागता आया था शायद, हांफता-हांफता बोला, "स्वामीजी आप से भेंट करना चाहते हैं अभी, आज्ञा दें तो उन्हें बुला लाऊं?"

"जरूर बुला लाओ." मैंने प्रसन्नता से कहा.

पत्नी भी आ खड़ी हुई, बोली, "स्वामीजी को लेने जा रहा है? ले आ, एक बार फिर उन के दर्शन हो जायेंगे."

संन्यासी आ गया. आज फिर वह झुककर मुझे प्रणाम करने लगा तो मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये. कहना चाहा कि. . .प्रणम्य तुम हो, मैं नहीं. मैं तो एक अति साधारण व्यक्ति हूं. सीमित ज्ञान है मेरा. तुम्हारे समक्ष सचमुच तुच्छ हूं.

संन्यासी ने मधुर हंसी हंसकर कहा, "अनायास आज तीव्र इच्छा हुई कि आपके दर्शन करूं. बंधु तारादत्त से मुझे आपका परिचय मिल गया है. इतने बड़े संस्कृत साहित्य के विद्वान हैं आप, इतने बड़े कथा-शिल्पी हैं, बहुत ही अद्भुत लगा है मुझे. . .सोने में सुगंध. कल आपकी एक रचना पढ़कर मुग्ध हुआ मैं. कला का ऐसा मधुर स्वर सुना कि मन आनंद में डूब गया. कुछ पूछना चाहता हूं, आज्ञा है?"

"जो इच्छा हो, पूछिए. सौभाग्य है मेरा."

संन्यासी ने जरा-सा हंसकर कहा, "नारी के जिस मधुमय स्वरूप का आप अंकन करते हैं, इस चिर सत्य का मूलाधार क्या है? कलाकार तो क्रांतिदर्शी होता है. . .कहां मिले आपको इस अनुपम माधुर्य के दर्शन?"

मैंने तनिक रुककर कहा, "जहां केवल देना ही देना है, पाना कुछ नहीं है, प्यार का यह चिरंतन सत्य, यह तो मेरे देश की संस्कृति की धरोहर और यह मेरे रक्त की शिराओं में व्याप्त है. अनायास मुझे इसकी उपलब्धि हुई है. शाश्वत प्रतीक, शाश्वत सत्य. . .कृष्ण की राधा! और राधा से अलग होकर भागकर कहां जायेगा कृष्ण? उसकी सत्ता में ही तो बैठी है राधा. क्या वह नहीं जानता कि राधा के बिना खुद वह आधा है? यह प्राणों से प्राणों का बंधन. . .इसकी व्याख्या करूं? क्या व्याख्या करूं भला, यह जो अनिर्वचनीय है. . ."

संन्यासी ने निषेध में शीघ्रता से हाथ हिलाकर शांत स्वर में धीरे से कहा, "सौंदर्य नष्ट हो जायेगा प्यार का! अब और कुछ मत कहिए." उसने प्रणाम की मुद्रा में अपने दोनों हाथ जोड़कर नयन मूंदे, अस्फुट-से स्वर में इतना ही कहा, "धन्य हो प्रभु!"

फिर मेरी आंखों में आंखें डालकर उसने आगे कहा,

**राधा से अलग होकर भागकर कहां जायेगा कृष्ण? उसकी सत्ता में ही तो बैठी है राधा. क्या वह नहीं जानता कि राधा के बिना खुद वह आधा है?—— प्राणों के इस बंधन को जीवन के स्तर पर रेखांकित करती मर्मस्पर्शी कहानी——**

"कितना सुख मिलता है, जहां एक हृदय की आवाज दूसरा हृदय सुन लेता है, कितनी तृप्ति होती है!" और फिर अपने होंठों पर मुस्कान लाकर मीठी नजरों से मेरी ओर ताकता पूछने लगा, "आपको खुशी लग रही है न?"

"बहुत अधिक!" मैंने कहा, "मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे साधु पुरुष से. . ."

संन्यासी ने अकुलाकर कहा, "देखिए, फिर सौंदर्य नष्ट हो जायेगा! यह हम दोनों के मिलन का सुख. . .अब आगे कुछ भी मत कहिए. नहीं कहेंगे न!"

"नहीं कहूंगा." मैंने भावावेश में कहा.

ठीक उसी समय मेरी पत्नी ने थोड़े-से अमरूद और टमाटर संन्यासी के आगे ला रक्खे.

चौंका वह, "यह क्या मां?"

"देखिए," मेरी पत्नी ने द्रवित स्वर में कहा, "आज आप अगर यह भी नहीं खायेंगे तो मुझे बहुत व्यथा होगी."

संन्यासी तुरंत हाथ जोड़कर बोला, "नहीं मां, मैं तुम्हें व्यथा नहीं दूंगा."

और वह शीघ्रता से पदार्थ खाकर बोला, "और दीजिए."

जब वह उठकर चलने लगा तो चारों ओर देखकर बोला, "मीना कहां है?" गुड़िया अपनी सहेली के घर गयी


In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई थी. तब अपने झोले से एक 'पेन' निकालकर उसने मेरी पत्नी को देते हुए कहा, "यह मीना को. . ."

दूसरे दिन लड़की ने स्कूल से आते ही अपनी मां को पुकार कर कहा, "जीजी-जीजी, मेरी यह कलम संभालकर रख दो. जीजी, मेरी बहनजी ने यह कलम देखी न, तो कहने लगीं कि तुझे कहां से मिल गयी यह? मैंने कहा कि एक स्वामीजी हैं, उन्होंने दी है मुझे. बहनजी ने बतलाया कि—यह आस्ट्रेलिया की बनी कलम है, दो-ढाई सौ रुपये में आती है. खो मत देना. जीजी, मैं इसे स्कूल नहीं ले जाऊंगी अब. कोई लड़की चुरा लेगी तो क्या होगा फिर. इसे बक्से में संभालकर रख दो. परीक्षा देने जाऊंगी न, तब दे देना मुझे . . .इसी से परीक्षा दूंगी."

पत्नी कलम लिये खड़ी रह गयी. मैंने हंसकर कहा, "तुमने संन्यासी को जितने के फल खिलाये, उसका सौ गुना वे गुड़िया को दे गये."

इसके बाद दो-तीन बार संन्यासी से मेरी और भेंट हुई. मैंने लक्ष्य किया, वह तीनों बार छुट्टी के दिन ही आया और ठीक सुबह आठ बजे, जब मैं प्रायः खाली रहता हूं.

एक बार आया था श्रीमद्भागवत के दो अंशों के विषय में जिज्ञासा लेकर. श्रीमद्भागवत का मेरा अध्ययन है, परंतु जब वह मेरे आगे एक अंश का रस और अलंकार को लेकर स्वयं व्याख्या करने लगा तो उसका काव्य शास्त्रीय पांडित्य देखकर मैं दंग रह गया.

फिर आया था श्री अरविंद के 'सावित्री' महाकाव्य को लेकर. श्री अरविंद की थ्योरी से मेरा सामान्य परिचय है. और मैंने शायद उसी दिन उसके मुख से पहली बार सुना, योगीराज के गूढ़ दार्शनिक रहस्य को. बहुत आनंदित हुआ.

आखिरी बार संन्यासी जिस विषय पर चर्चा करने आया वह मेरे लिए एक प्रकार से अनजाना ही था. आईंस्टीन की एक छोटी-सी पुस्तक है—'दी वर्ल्ड एज आई सी इट.' संन्यासी ने उसी किताब पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "भारतीय ऋषियों की परंपरा से जुड़ा यह महान वैज्ञानिक इस युग का एक ऋषि ही है. उपनिषदों वाली दिव्य अनुभूति मुझे आईंस्टीन के वचनों में हुई है. मैं उसे प्रणाम करता हूं. . .संपूर्ण हृदय से-संपूर्ण आत्मा से प्रणाम करता हूं!" और इस के बाद वह मुझे 'परमाणु' के विषय में कुछ कहने लगा तो मैं चकित रह गया. इस आदमी की प्रखर बुद्धि के आगे मेरा ज्ञान कितना नगण्य है! कितना-कुछ अपरिमेय इसके मस्तिष्क में है. और यह कितना अज्ञात है यहां.

उस दिन मैं अपने को संवरण नहीं कर सका. उसके व्यक्तित्व के आगे मानो मेरा हृदय ही नतमस्तक हो गया. और वह विदा होने लगा तो किसी आंतरिक प्रेरणा से वशीभूत होकर मैं उसके चरणों की ओर झुकने लगा तो संन्यासी ने मुझे दोनों भुजाओं से पकड़ लिया और फिर अपने दोनों विशाल बाहु फैलाकर मुझे अपने कलेजे से सटा लिया. और जब हम दोनों बाहु-बंधनों से अलग हुए तो हम दोनों की आंखें पुरनम थीं. संन्यासी बिना एक शब्द बोले, धीर मंथर गति से चला गया, मुझे यों ही छोड़कर.

इसके दो सप्ताह बाद ही वह अभागा दिन आया. सुबह से ही आसमान पर बादल छाये हुए थे. फिर बूंदा-बांदी होने लगी. मैं विश्वविद्यालय नहीं गया. कंबल ओढ़े लेटा गोर्की का 'माई यूनिवर्सिटीज' पढ़ता रहा. तीन-चार बजा होगा कि तारादत्त चुपचाप मेरे आगे आ खड़ा हुआ. चेहरा उसका उदास-क्लांत. मैंने लेटे-लेटे ही कहा, "बैठो भाई, बोलो क्या समाचार हैं? बादल-पानी में ही चले आये?"

शिथिलगात होकर वह मेरे आगे बैठ गया और बुझे-बुझे स्वर में बोला, "स्वामीजी चले गये."

"चले गये?. . .कहां चले गये?" मैंने अचरज से पूछा.

तारादत्त भरे गले से बोला, "उनका स्वर्गवास हो गया."

"कब?" मैं फौरन उठकर बैठ गया.

"आज, सवेरे. . .ब्राह्म मुहूर्त में." आगे फिर तारादत्त ने डूबी-डूबी आवाज में पूरी घटना सुनायी कि. . .नित्य की तरह वे गंगा-स्नान करने गये. हम लोग तो सो ही रहे थे. फिर जाने कब वे माता अन्नपूर्णा के दर्शन करने चले गये. और वहीं मंदिर में भगवती के चरणों के निकट चौखट पर मस्तक रखकर प्रणाम करने लगे. फिर मस्तक न उठाया. बहुत देर बाद लोगों को पता चला कि उन्होंने वहीं प्राण तज दिये हैं. किसी ने फिर यहां आश्रम में आकर खबर दी. हम लोग उनके निर्जीव शरीर को मंदिर से उठा लाये. अभी घंटा भर पहले उन्हें गंगा में जल-समाधि देकर हम लौटे हैं.

मैं तो यह वाकया सुनकर स्तब्ध रह गया था. पत्नी ने सुना तो उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे.

तारादत्त उसांस लेकर बोला, "चित्त बहुत व्याकुल हो रहा था मेरा, चैन नहीं पड़ा तो आपके पास चला आया. लगता है, मेरे पिता की मृत्यु हो गयी है. कितना स्नेह दिया मुझे, कितनी सहायता की है मेरी इन महीनों में, क्या सुनाऊं आपको! देवता थे जैसे कोई. अपने पुण्यधाम को चले गये."

तारादत्त धीमे स्वर में लगातार उन्हीं की बातें सुनाता रहा और हम दोनों निश्चल-निःशब्द बैठे उस आदर्श संन्यासी की पुण्यगाथा सुनते रहे.

उस समय पानी जोर पकड़ गया और सामनेवाली टीन बजने लगी तो पत्नी उठकर कोयले ढांपने चली गयी.

तारादत्त थोड़ी देर मौन रहा. फिर उसने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ निकाला और मुझसे बोला, "झोला वे कहीं भी छोड़ते न थे. उनका झोला जाने कैसे मेरे कमरे में ही टंगा रह गया. अभी थोड़ी देर पहले मेरी नजर उस पर पड़ी. झोले में गीता थी, कौपीन थी, अंगोछा था और यह डिब्बी थी एक. यह देखिए!". . .डिब्बी उसने मेरे आगे रखकर कहा, "यह, जाने क्या है इसमें? कुछ रहस्यमय तांत्रिक वस्तु है क्या? आप जरा देखिए तो!"

मैंने वह मटमैली-सी मध्यम आकार की गोल डिब्बी उठा ली और उसे खोलकर देखा. तब तक पत्नी फिर लौट कर अपनी जगह बैठ गयी थी.

मैंने डिब्बी फिर बंद कर दी. तारादत्त उत्सुकता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछने लगा, "यह क्या है गुरुजी?"

मैंने तारादत्त से कहा, "यह तुम मुझे दे दो."

मेरी पत्नी तारादत्त को उठा ले गयी. कुछ खिलाया-पिलाया उसे. फिर मेंह रुक जाने पर वह चला गया.

पत्नी फिर मेरे पास आ बैठी और उसने उदासी भरे स्वर में पूछा, "क्या है इस डिब्बी में? आपने देखा?"

मैंने कहा, "देख लिया."

तब मेरी उमर तकरीबन पांच साल रही होगी. अपने पिता के पास ऊपरवाले कमरे में बैठा किताब की तस्वीरें देख रहा था. सामने से हलकी-हलकी धूप आ रही थी. मेरे पिता सिर झुकाये कुछ लिख रहे थे कि अचानक कालीचरण चाचा वहां आ खड़े हुए.

पिता ने कहा, "आओ बैठो." और लिखना बंद करके एक किनारे हो गये तो कालीचरण चाचा चुपचाप खाट पर आ बैठे. बहुत उदास थे वह.

कालीचरण हमारे सगे चाचा न थे, रिश्तेदार भी न थे. पिता के मित्र थे और इसी नाते हम उन्हें चाचा कहते थे.

पांच बरस की उमर भला क्या होती है! उस उमर की बातें चालीस-पैंतीलिस साल बाद किसी को भला कितनी याद रहेंगी? सो मुझे उस दिन की जितनी बात याद रह गयी है, वह यही है कि भरी जवानी में चाचा की पत्नी का देहांत हो गया था. चाची को मैंने देखा था—बहुत-बहुत खूबसूरत थीं, इतना याद है. कुछ दिन पहले ही उनकी मौत हुई थी.

दोनों मित्र घड़ी भर चुप बैठे रहे. फिर शायद चाचा अपनी स्वर्गीय पत्नी की बातें करते रहे. पिता मेरे मौन होकर उनकी वह व्यथा-कथा सुनते रहे. मुझे अच्छी तरह याद है, फिर उन्होंने भरे गले से कहा, "महाशय, (वे मेरे पिता को इसी नाम से पुकारते थे) परसों मैं उसके (पत्नी के) 'फूल' (अस्थियां) बीनने गया था. बुझी चिता से 'फूल' बीन रहा था गंगाजी ले जाने के लिए तो मुझे चिता की राख में ही उसकी एक चूड़ी का टुकड़ा मिला. महाशय, वह आधी टूटी चूड़ी गरम थी. फूल कपड़े में बांधकर बड़े भैया बाग के रास्ते ही चले गये गंगाजी में उन फूलों को प्रवाहित करने और मैं लौटकर घर चला आया. उसकी वह आधी चूड़ी मैं जेब में रख लाया."

पिता मेरे चुपचाप सुनते रहे और मैं सुनता रहा और अपलक चाचा की ओर देखता रहा.

चाचा ने नीचे को मुंह करके कोट की ऊपरी जेब में हाथ डाला और दो अंगुलियों से पकड़कर वह आधी चूड़ी बाहर निकाली और मेरे पिता के आगे करके हौले-से कहा, "यह देखो, यही है."

चाचा की अंगुलियों के बीच चमकती उस लाल-लाल आधी चूड़ी की ओर मेरे पिता निःशब्द निहारते रहे. . . निहारते रहे.

उन क्षणों का मैं क्या वर्णन करूं? पांच साल का अबोध बालक मैं विह्वल होकर चाचा की ओर देखता रहा, दो अंगुलियों और अंगूठे के बीच चमकता वह लाल चूड़ी का आधा टुकड़ा और मेरे पिता की ओर ताकती उनकी डबडबायी आंखें और होठों पर जरा-सी मुसकराहट! इतनी करुण मुस्कराहट! वह मुस्कराहट, वे डबडबायी आंखें, वह लाल चूड़ी का टुकड़ा—वह दृश्य जैसे मेरे मानस-पटल पर हमेशा के लिए अमिट होकर अंकित हो गया.

. . . आह, मुझे सौंदर्य की साकार प्रतिमा, स्वर्ग सिधारी उन नवयौवना चाची की याद आयी और मुझे लगा, मैंने मन ही मन कहा—आहा, चाचा की जगह अगर मैं होता, ऐसी ही पत्नी मर गयी होती, ऐसे ही उस की बुझी चिता से अस्थि-संचय करने जाता, ऐसे ही अगर कोई टूटी चूड़ी मिल जाती तो मैं भी जरूर-जरूर चाचा की तरह ऐसे ही उसे जेब में रख लेता—जरूर रख लेता?

## लघुकथा

## उपकृत

▣ जगदीश कश्यप

मूसलाधार बारिश में रामदीन की कोठरी लगातार टपक रही थी. सुन्न कर देनेवाली ठंड में रामदीन की पत्नी झुनिया भगवान को गाली बक रही थी. उसके दोनों बच्चे 'बापू-बापू' की आवाज में ठिठुरते हुए डकरा रहे थे.

रामदीन साहब का विश्वसनीय नौकर था, उनके बाप के जमाने का.

"आज के नौकर बड़े हरामजादे होते हैं. न काम न धाम, बस, तनख्वाह बढ़ा दो!" साहब ने यह बात उस वक्त कही जब रामदीन अंग्रेजी शराब की बोतल ले आया और ठिठुरता हुआ आगामी हुक्म का मुंतजिर था.

"भई, नौकर है तो कमाल का!" मेहमान ने कहा, "देखो, कहीं से भी लाया, पर इतनी रात में इस ब्रांड की दूसरी बोतल मिलनी मुश्किल थी. पहली बोतल में तो मजा आया नहीं!" यह कहते ही उन्होंने जेब में हाथ डालकर कुछ निकाला और बोले, "ये लो दस पये, बाल-बच्चों के लिए कुछ ले जाना, बहुत ठंड पड़ रही है. . . और देखो, तुम भीग गये हो. . . कहीं बीमार न पड़ जाओ!"

रामदीन दरवाजे पर ही खड़ा रहा तो मेहमान ने फिर कहा, "ले लो रामदीन, मैं तुमसे बेहद खुश हूं!"

इस पर कोठी के मालिक ने गर्वपूर्वक कहा, "यह हमारा वफादार नौकर है. एक पैसा भी बख्शीश का नहीं लेगा. . . अच्छा रामदीन, रात हो गयी है, तुम अब जाओ. आज हम तुमसे बहुत खुश हैं!" कहते-कहते ही उन्होंने एक पेग चढ़ा लिया और बुरा-सा मुंह बनाकर काजू की प्लेट की तरफ हाथ बढ़ाया.

यद्यपि रामदीन ठंड से बुरी तरह कांप रहा था तथापि वह खुशी-खुशी अपनी कोठरी की ओर बढ़ रहा था, बीवी को यह बताने कि आज मालिक उससे बहुत खुश हैं! ☐

● डी–32, गली सिटी डाकघर, गाजियाबाद (उ.प्र.)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचो तो, पांच बरस की जरा-सी उमर में मेरा उन चाचा से यह इतना 'साधारणीकरण' कैसे हो गया था! 'मेरा दिल बचपन से आशिकाना था'––बस, यही समझ लो!

धीरे-से साल आगे सरक गया कि बस्ती में खबर फैली––कालीचरणजी गंगा में डूब गये!

कुंभ पड़ा था उस वर्ष और कालीचरण जी कुंभ नहाने गये थे. कुंभ पर लगातार तीन दिनों वर्षा होती रही और उसी वर्षा में यात्रियों से भरी दो नावें संगम में डूब गयीं. संग-साथ के लोग टेंट में दुबके पड़े रहे. . . अकेले कालीचरणजी गायब थे. जब शाम तक वे डेरे पर न लौटे तो साथियों को चिंता हुई. मेले में चारों ओर खोज हुई, कुछ पता न चला तो अंत में सबने यही अनुमान लगा लिया कि वे भी जरूर नाव में थे और दूसरी लाशों के साथ उनकी लाश भी कहीं बह गयी.

कुछ दिनों तक लोग उनकी चर्चा करते रहे, दुःख मनाते रहे फिर धीरे-धीरे लोग उन्हें भूलने लगे और फिर लोग उन्हें बिलकुल भूल गये.

समय का रथ अपने पहियों की ध्वनि छिपाये धीरे-धीरे आगे बढ़ गया और मैं बालक से युवा हुआ, पढ़-लिखकर प्रोफेसर हो गया. शादी हुई, एक बच्चे का बाप हो गया. तब मेरे पिता उसका जन्मोत्सव मनाकर खुशी-खुशी स्वर्गधाम चले गये! . . .

चूड़ीवाली घटना के केवल हम तीन व्यक्ति ही साक्षी थे. स्वयं कालीचरणजी, मेरे पिता और पांच बरस का मैं. वे दोनों दुनिया में नहीं रहे तो अकेला मैं ही रह गया उस घटना का एकमात्र प्रत्यक्ष दृष्टा इस पूरे विश्व में.

मैं नहीं भूल पाया. किसी अनिंद्य सुंदरी की कोमल काया से दिन-रात लिपटी रहनेवाली-चिता की राख में लोटनेवाली–किसी चिरविरही के कलेजे से लगातार सटी रहनेवाली वह आधी लाल चूड़ी जाने कैसे मेरे अंतस्तल में धीरे-से चली आयी और थकी-थकी सिर झुका कर बैठी रही सालों-सालों. असंख्य दिन-असंख्य रातें चली गयीं. वह बैठी रही और जब-तब अलस-उनींदी आंखों से मेरी ओर निहारती रही––यहां तक कि मैं प्रौढ़ हो गया. मैं नहीं भूल पाया उस आधी लाल चूड़ी की कहानी. . .!

एक ही आसन से अचल बैठी मेरी पत्नी यह छोटी-सी कहानी सुनती रही थी. मैं मौन हो गया. उसने धीरे-से पूछा, "लेकिन इस कहानी का इस डिब्बी से क्या संबंध है?"

"इसी डिब्बी की कहानी है यह!" मैंने कहा और डिब्बी खोल दी, "देखो जरा!"

डिब्बी में भीतर नीली-नीली मखमल लगी थी, ढक्कन में भी मखमल थी और उस मखमल के ऊपर ठीक डिब्बी के साइज की आधी लाल चूड़ी चमचमा रही थी––प्रायः आधी शताब्दी पूर्व का एक ऐतिहासिक अवशेष!

हम दोनों अपलक होकर मौन भाव से उसे निहारते रहे. दोनों में से किसी को भी उसे छूने की हिम्मत न हुई. मैंने डिब्बी बंद कर दी.

पत्नी एक दीर्घ निश्वास लेकर मेरी ओर देखने लगी तो मैंने आगे कहा, "मेरा दृढ़ विश्वास है, संन्यासी और कोई नहीं. . .मेरे कालीचरण चाचा ही थे. विधि की यह विडंबना देखो कि कल तक मैं उन्हें नहीं पहचान सका और न वे ही मुझे पहचान सके. इतने निकट होकर भी इतने दूर रह गये हम! यदि किसी प्रकार जान पाते. . ."

"मानव के भीतर जो एक दूसरा मानव छिपा बैठा है, वह इन आंखों से नहीं दिखाई देता. सोचो जरा, पांच बरस का बालक और पचासी बरस का वृद्ध–कैसे दोनों एक ही धरातल पर आ खड़े हुए हैं. मानव का यह पावन-कोमल रूप, प्यार की यह दिव्य अनुभूति–प्राणों से प्राणों का यह तादात्मय––कितना मधुर कितना महान्! समस्त विश्व के समस्त मानवों के बीच एक यही अखंड प्रेम ज्योति अपना शीतल, उज्ज्वल मधुर आलोक फैलाये है!"

. . . मेरी पत्नी को जाने क्या हुआ, मेरी ओर दोनों हाथ जोड़ कर, छलछलायी आंखें लिये करुण स्वर में कह उठी, "आपसे बिनती कर रही हूं. . .यह डिब्बी मुझे दे दीजिए!"

क्षण भर मैं उस के मुख को देखता रहा, फिर मैंने कह दिया धीरे-से, "ले लो!"

मैं अब रिटायर हो गया हूं. मेरे अनेक शिष्य इस समय उच्चपदासीन हैं. तारादत्त आई. ए. एस. हो गया है. मेरी पत्नी के अधिकांश केश अब श्वेत दीखते हैं. बेटा सपरिवार अब अन्यत्र रह रहा है. गुड़िया पति-गृह चली गयी है. हम दोनों प्राणी शांतिपूर्ण जीवन बिता रहे हैं.

आप अगर किसी दिन हमारे घर आयें तो देख पायेंगे कि. . .पूजास्थल में, राधा-कृष्ण की पावन प्रतिमा के निकट एक सामान्य-सी डिब्बी रक्खी है और उसके ऊपर एक ताजा फूल चमक रहा है! □

● डी. 5/131, त्रिपुरा भैरवी मीरघाट, वाराणसी (उ.प्र.)

लघुकथा

## महत्त्व ▣ गुड्डू गोविंद

एक ग्रामीण दिल्ली घूमने आया. बस पर रिंग रोड से गुजरते हुए उसके दिल्ली में रहने वाले रिश्तेदार ने बताया, "यह राजघाट है, यहां बापू-जी की समाधि है." ग्रामीण ने सिर नवा दिया.

"यह शांतिवन है, यहां नेहरूजी की समाधि है." ग्रामीण ने श्रद्धा से सिर झुका दिया.

"यह विजयघाट है, यहां शास्त्रीजी की समाधि है." ग्रामीण ने पुनः श्रद्धा से सिर झुका दिया.

थोड़ी दूर जाने पर ग्रामीण ने एक स्थान पर मामूली-सी लगने वाली भीड़ देखकर पूछा, "अरे भाई, यह कोई जुलूस-वुलूस है क्या?"

"नहीं, ये निगमबोध घाट है, यहां मुर्दे फूंके जाते हैं." सुनकर ग्रामीण के चेहरे के भाव बदल गये. उसने खिड़की से चेहरा हटा लिया और हौले-से बोला, "अच्छा!" □

● 12 एच, पाकेट के, शेख सराय-2, नयी दिल्ली.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## तुलसीदास चंदन घिसें

**तुलसीदास बहुत कुछ सोचने लगते हैं अचानक. . . सोचते हैं तो फिर सोचते ही चले जाते हैं. . . क्यों न सोचें! जब दिमाग होता ही सोचने के लिए है, तो क्यों न सोचें. . . ! दिमाग तुलसीदासजी का सोचता है मगर चंदन बजरिये परसाईजी घिसा जाता है. . .**

# किससे पूछूं कि क्या है भारतीय संस्कृति

▣ **हरिशंकर परसाई**

इधर प्रधान मंत्री बार-बार अपनी संस्कृति की रक्षा की बात कर रही हैं और विशेष जोर से पश्चिम के 'सांस्कृतिक उपनिवेशवाद' के प्रयत्नों से सचेत कर रही हैं. और भी कुछ प्रमुख बुद्धिजीवी इस संबंध में लिख रहे हैं कि भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए. मेरे लिए यह भारतीय संस्कृति विशेष रूप से साकार होती है क्योंकि मैं लड़कियों के कालेज के पास रहता हूं. मैं देखता हूं, प्रतिष्ठित शरीफ कहलाने वाले घरानों के लड़के लड़कियों का दुपट्टा छीन लेते हैं, उनका ब्लाउज फाड़ देते हैं और लोग इसे अनदेखी करके निकल जाते हैं. यह फलित संस्कृति है. 'गणित' संस्कृति पोथियों में है, रविशंकर के सितार में है, इंद्राणी रहमान की नृत्य मुद्राओं में है, बिरजू महाराज की थिरकन में है, नंदलाल बोस के चित्रों में है, रवि ठाकुर के काव्य में है और है म्यूजियमों तथा संग्रहालयों में. फलित संस्कृति यह सड़क पर है. जहां नारी पूजी जाती है वहां देवता रमते हैं—इसका आचरण हम देखते हैं और बिना हस्तक्षेप के निकल जाने वाली नपुंसक सुसंस्कृत जाति के दर्शन करते हैं. पति के मरने के बाद विधवा को भांग-धतूरा पिलाकर परिवार के लोग पति की चिता में डालकर 'सती' कर देते रहे हैं जिससे उसकी जायदाद पर कब्जा कर लें. यह भी भारतीय संस्कृति. और भैंस काली, मगर दूध सफेद देती है—यह भी भारतीय संस्कृति.

किससे पूछूं कि क्या है, भारतीय संस्कृति!

तुलसीदास को याद आया, अभी 'अज्ञेय' एंड पार्टी ने 'जानकी जीवन यात्रा' की है. और याद आया सन् 55-60 के बीच अज्ञेय ने अमेरिकी फाउंडेशन की फैलोशिप लेकर दक्षिण पूर्व एशिया की संस्कृति का अध्ययन किया था. अमेरिकी फैलोशिप से किया गया संस्कृति का अध्ययन विशेष महत्व का होता है. यह सी. आई. ए. के काम भी आ सकता है. अज्ञेय के आसपास सांस्कृतिक दल है.

तुलसी अज्ञेय के पास पहुंचा. वहां और भी गुणीजन थे. पंडित विद्यानिवास मिश्र थे, जो अतीत के किसी 'स्वर्ण युग' में रहते थे. उनके ललित निबंधों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उनका विश्वास है कि सुंदरी तरुणी अभी भी अशोक वृक्ष पर पदाघात करे, तो वह पुष्पित हो जाएगा. इधर दो बंगलों में अशोक वृक्ष है. मुहल्ले में सुंदरी तरुणियां भी हैं. किसी से कहूंगा कि इस वृक्ष को लात मार तो वह फूलों से लद जायेगा. कोई तरुणी शायद इसे बेवकूफी समझकर मेरी हंसी उड़ाये. यहां कदंब भी तो है. पर कोई कृष्ण चीरहरण करके उसके ऊपर नहीं बैठता. गुंडे चीरहरण करके पुलिस से पिटते हैं.

वहां शंकरदयाल सिंह भी थे जिन्होंने 'जानकी जीवन यात्रा' का प्रबंध किया था. गद्गद् और उद्वेलित व्यक्तित्व हैं. सबके प्रति उद्वेलित हो जाते हैं. आपात्काल में पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र के प्रति उद्वेलित होकर इधर जबलपुर उनसे देश का भविष्य पूछने आये थे. जिनका 'भविष्य' इंदिरा गांधी ने बीच में ही 'भूत' कर दिया था. पर शंकरदयाल सिंह उद्वेलित व्यक्तित्व हैं.

**हम इश्क के बंदे हैं, मजहब से नहीं वाकिफ,**
**गर काबा हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या.**

और थे नरेश मेहता. प्यारे आदमी. सन् 50 से मैंने इन्हें अज्ञेय के कट्टर विरोधी के रूप में देखा है. मगर रहन-सहन में अज्ञेय की नकल भी करते रहे हैं. अज्ञेय बगल में बटन वाला कुरता पहनते थे, तो नरेश मेहता भी बगल में बटन वाला कुरता. 'सुनो वनपाखी' को बहुत साल हो गये.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच नरेश मेहता ने बहुत अच्छा लिखा है. वे हिंदू राष्ट्रवाद और संस्कृति में डूब गये हैं. उनकी 'संशय की रात' समाप्त हो गयी. एशिया में अमेरिका द्वारा जो 'नास्तिकों' की कूटनीतिक और सैनिक घेराबंदी की जा रही है उससे बाला साहेब देवरस और अटल-बिहारी वाजपेयी की श्रद्धा जनरल जिया उल हक पर हो गयी है. अब देवरस भाषणों में उस मोहम्मद इकबाल की पंक्तियां बोलते हैं जिसके बारे में कहा जाता है कि पाकिस्तान का विचार उसी का दिया हुआ है. देवरस सभाओं में कहते हैं—

**कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,**
**कब से रहा है दुश्मन दौरे जहां हमारा.**

यह 'कुछ बात' जिससे हमारी हस्ती नहीं मिटती, संस्कृति है. पर 'संस्कृति' का अर्थ इनके लिए दूसरा है. नरेशजी के लिए अब यही अर्थ हो गया है. पहले नरेशजी के लिए संस्कृति का दूसरा अर्थ था.

बहरहाल, बात तो शुरू करनी थी. तुलसी ने अज्ञेय से कहा—अब आप 'शूर्पनखा जीवन यात्रा' कीजिए. लंका से दंडकवन तक, जहां लक्ष्मण ने उसकी नाक काटी थी. नीरस हृदय-हीन था लक्ष्मण! आपको वहां कहीं शूर्पनखा का रक्त मिलेगा. पर इस यात्रा में कागभुशुंड और गरुड़ को साथ रखिये. ये दोनों 'इन्फर्मेशन ब्यूरो' हैं.

विद्यानिवासजी ने पूछा—कागभुशुंड और गरुड़ कहां पायेंगे?

मैंने कहा—नागार्जुन और अश्क तो हैं.

अज्ञेय का सुंदर मुख मलिन हो गया. वे बोले नहीं. नरेश मेहता ने कहा—दोनों अज्ञेयजी पर हमला करते हैं. उन दुष्टों को साथ क्यों ले जायेंगे?

शंकरदयाल सिंह—देखिये नरेशजी, बाबा नागार्जुन हमारे बिहार के गौरव हैं. उन्हें दुष्ट न कहिये. हम आपको 'शूर्पनखा जीवन यात्रा' पर नहीं ले चलेंगे. हम कार नहीं देंगे. समझलेन! कि समक्षाव?

नरेश मेहता—नहीं ले जाओगे, तो मैं जनवादियों के खेमे में चला जाऊंगा. उधर के 'अरकटिया' हमें बुला चुके हैं.

अज्ञेय—देखिए, नागार्जुन लिखते हैं कि हमने शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की क्षमता खो दी, इसलिए ऐसी यात्राएं करते हैं. पर मैं तो शुरू से यायावर रहा हूं. यात्राओं से संस्कृति का बोध बढ़ता है. चेतना आती है.

तुलसी—हां मुझे याद है. 68-69 की बात होगी. आप लंबे अरसे से विदेश में रहकर लौटे थे. पालम से आप टैक्सी से घर आये. आपको लगा कि टैक्सी वाले ने पहले से ज्यादा पैसे ले लिये. फिर कनॉट प्लेस में आपने जूतों पर पालिश करवाया. पालिश वाले ने पहले से कुछ अधिक पैसे ले लिये. आपको क्षोभ हुआ. आपने कुछ इस तरह एक पत्र लिखा था. मैंने पढ़ा था. शीर्षक था—'वापसी का दर्द'. आपने लिखा था. कैसे हैं ये लोग? एक आदमी एक अरसे बाद देश लौटा है. उसके साथ ऐसा व्यवहार! लिखा था न?

अज्ञेय—हां लिखा था. मैं वास्तव में क्षुब्ध था कि मेरी अनुपस्थिति में देश के लोगों का कितना सांस्कृतिक पतन हो गया है.

तुलसी—पर आपने तब यह नहीं सोचा, न अब सोच रहे हैं कि पैट्रोल के और पालिश की डिब्बी के दाम बढ़ गये थे. उधर गेहूं और दाल के भी दाम चढ़ गये थे. इसलिए गरीब पालिश वाले ने आपसे पच्चीस पैसे ज्यादा लिये. उसका सांस्कृतिक पतन नहीं हुआ था. पर आपका गुस्सा उसी गरीब पर था. बात यह है कि गेहूं, चावल, दाल, नमक, प्याज के भाव आपको कभी मालूम नहीं रहे. ऐसी जानकारी को आपने असांस्कृतिक माना. यह आत्म-केंद्रित भ्रम की महिमा क्या संस्कृति से पैदा होती है?

अज्ञेय—वह मैंने किसी 'मूड' में लिखा होगा. मगर आप भूलते हैं कि मैंने अकाल के समय बिहार की भी यात्रा की थी.

तुलसी ने निवेदन किया, हां, उस अकाल यात्रा की मोहक रिपोर्ट फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने लिखी थी. मैंने पढ़ी थी. इस तरह लिखा था—'और यायावर केमरा टांग कर कार में बैठ गये. कार बढ़ चली.' आपने अकाल पीड़ितों के कई फोटो लिए. मैं पूछता हूं—अकालपीड़ितों के बढ़िया फोटो लेना ही संस्कृति है या..?

नरेश मेहता ने कहा—तो गुंसाईजी, आप ही संस्कृति समझा दीजिए.

तुलसी ने कहा—मैं क्या समझाऊं? मैं तो जिज्ञासु की तरह आया हूं. यों अनेक मनीषियों के विचार संस्कृति के बारे में मैंने पढ़े हैं. 'नाना पुराण निगमागम' से चोरी करके घोलमाल करना हमारा पुराना धंधा है. ज्यां पाल सार्त्र ने कहा है—जब मनुष्य दासता और दमन से अपने को मुक्त करता है, तब वह जिस शब्द से परिभाषित होता है, उसे 'संस्कृति' कहते हैं. अब लीजिए-दासता और दमन से मुक्ति के संघर्ष को संस्कृति कहा गया है. ऐसी कई बातें मनीषियों ने कही हैं. तो मैं आपके पास इसलिए आया कि जो संस्कृति-कर्म में लगे हैं, उनसे कुछ सीखूं.

अज्ञेय—परंतु प्रधानमंत्री संस्कृति पर कुछ क्यों बोलें? और क्यों विचार करें?

विद्यानिवास बोले—ये राजनेता हर विषय पर बोलते हैं. चुनाव का साल है. धर्म, अध्यात्म, संस्कृति सब पर बोलेंगे. गरीबों, अपढ़ों के वोट लेना है न. हम न गरीब, न अपढ़. हम दिमागपच्ची क्यों करें?

शंकरदयाल सिंह ने कहा—नहीं पंडितजी, कुछ मनीषी भी सांस्कृतिक संकट के बारे में गंभीरता से लिख रहे हैं. अभी अर्थशास्त्री पी. सी. जोशी का इस संबंध में एक लेख छपा है. मैंने पढ़ा है.

विद्यानिवास मिश्र ने कहा—अरे, तो संस्कृति करने से कौन रोकता है? प्रातःकाल उठो, स्नान करो, पूजन करो, लड्डू खाओ, दुग्धपान करो. दोपहर को सुस्वादु भोजन करो. संध्या समय भांग छानो. रबड़ी खाओ. धोती पहनो, चंदन लगाओ. संयम से स्त्री के साथ रहो.

**अनुज वधू भगिनी सुत नारी**
**सुन शठ कन्या सम येचारी**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई**
**ताहि बधें कछु पाप न होई**

यह भारतीय संस्कृति है.

तुलसीदास ने विनती की–पंडित विद्यानिवास जी, आप तो दैनिक कर्मकांड को संस्कृति मानते हैं. कर्मकांड और रूढ़ि क्या संस्कृति है? ताजमहल और अजंता क्या संस्कृति है? या संस्कृति कोई भीतरी मूल्यगत चीज है, जिसके उपादान और व्यक्त रूप ये सब काव्य, कला, संगीत, नाट्य, नृत्य हैं? विद्यानिवास जी, आप जरा गंभीरता से सोचकर बताइये.

विद्यानिवास जी ने कहा—देखिए, तुलसीदास जी, आपके 'बालकांड' के प्रथम श्लोक में ही व्याकरण की भूल है.

तुलसी ने कहा–प्रभु, क्षमा करें. भूलें मुझसे कई हुई होंगी. काव्य-विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहों लिख कागद् कोरे. आप तो भाषा-शास्त्री हैं न! क्षमा करें. पर हम सबकी मूल चिंता तो भारतीय संस्कृति है.

अज्ञेय ने कहा—हमारी चिंता संस्कृति नहीं है. हम लोग तो महाश्वेता की खोज में जा रहे थे. आप बीच में आकर कहते हैं कि 'शूर्पनखा जीवन यात्रा' करो. और फिर आप ही संस्कृति का प्रश्न उठाते हैं. आपको प्रधानमंत्री को प्रसन्न करके कुछ पुरस्कार या फैलोशिप लेना होगा. तो अपना वह पद लिखकर प्रधानमंत्री को दे दीजिए–

**कबहुंक अंब अवसर पाई**
**मौरियौ सुधि घाइबो कछु करुण कथा चलाई**

तो वे किसी सचिव को कह देंगी आपके लिए. आपने हमें काफी भ्रमित किया. जहां आपने बताया है, वहां भारद्वाज आश्रम है ही नहीं.

तुलसी ने निवेदन किया—आप स्वयं भ्रम में थे. काव्य से कहीं पुरातत्व तक पहुंचा जाता है. आपको सत्संग करना था. बिनु सत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई. इसीलिए कहता हूं कि कागभुशुंड और गरुड़ को साथ रखिए. छोड़िए महाश्वेता को. परम सुंदरी शूर्पनखा के पथ पर जाइये मुझे कोई पुरस्कार नहीं चाहिए.

नरेश मेहता ने कहा—गुसाईं जी, संस्कृति की ही चिंता है न आपको! देखिए, संस्कृति वहां शुरू होती है, जहां मनुष्य अपने 'मैं' से निकलकर तू, तुम और सर्व तक पहुंचता है.

विद्यानिवास जी ने कहा—इसकी चरम उपलब्धि है—आत्मवत् सर्व भूतेषु! या जैसा आपने कहा है, 'सिया राम मय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि जुग पाणी.'

नरेश मेहता—छिपकली अपने 'मैं' से बाहर नहीं जाती, इसलिए उसकी कोई संस्कृति नहीं है.

अज्ञेय ने कहीं गहरे से कहा—है. छिपकली अपने 'मैं' से बाहर निकलकर कीड़े तक जाती है और उसे पकड़ती है अपने 'मैं' से निकलना, जो भोग्य हो उसे पकड़ना और फिर अपने 'मैं' में घुसकर उसका भोग करना—यह संस्कृति है. 'मैं' को स्फीत करना सांस्कृतिक प्रक्रिया है.

तुलसी ने देखा, यह सुनकर विद्यानिवास मिश्र, नरेश मेहता, शंकरदयाल सिंह के चेहरे फक पड़ गये. वे अपने नेता की इस बात से हतप्रभ हो गये. मेरी तरफ दीन भाव से देखने लगे.

तुलसी वहां से यह कहता हुआ भागा—अगली बार भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद पर दूसरों से बात करूंगा. पंद्रह घैर्य रखें. □

नोंक–झोंक

## क़ीमत बनाने बिगाड़ने की

▣ हरिशंकर परसाई

**जैनेंद्रजी से चार-पांच बार की मुलाकात है. उनसे मजेदार नोक-झोंक होती है. एक बार दिल्ली में अफ्रो-एशियाई शांति सम्मेलन में गया था. बाहर निकल रहा था कि जैनेंद्रजी चादर सम्हालते मिले. हम लोग बाहर आये. मैंने कहा, 'जैनेंद्र जी आप यहां कैसे?' उन्होंने जवाब दिया, 'अरे भाई, सुना कि तुम लोग आये हो तो मैं भी आ गया.' मैंने कहा, 'आपकी कार नहीं है.' वे बोले, 'मेरे पास कार कहां है?'**

**मैंने कहा, 'अज्ञेय के पास तो है.'**

**उन्होंने कहा, 'कहां अज्ञेय, कहां मैं. मैं तो गरीब आदमी हूं.' उस समय जैनेंद्र ऋषि दुर्वासा की तरह लग रहे थे. सामने 'अज्ञेय' होते तो भस्म हो जाते.**

**फिर जैनेंद्र, संत की कुटिल मुद्रा में बोले, 'इस सम्मेलन में आने के लिए तुम्हें रूस से बहुत पैसा मिला होगा.' मैंने कहा, 'जी हां, इस सम्मेलन को बिगाड़ने के लिए जितना पैसा सी. आई. ए. से आपको मिला है, उससे काफी अधिक मुझे इसे सफल करने के लिए के. जी. बी. से मिला है.' जैनेंद्र हंसे. कहने लगे, 'तुम्हारी कटाक्ष क्षमता अद्भुत है. तुमने 'कल्पना' में मुझ पर काफी कटाक्ष किये. कलकत्ता के सम्मेलन में भी तुमने मुझ पर प्रहार किये, पर मैं बुरा नहीं मानता, क्योंकि इस छींटाकशी में तुम्हारा कोई, निहित स्वार्थ नहीं है. लेकिन तुम्हारे वे तीन चार लुच्चे कहानीकार दोस्त हैं न'—'लुच्चे' शब्द से जैनेंद्र ने किन लेखकों को विभूषित किया, ये वे लोग जान जायेंगे, सभी जान जायेंगे.** □

'चलते-चलते'

**एक बार एक छायाकार ने विंसटन चर्चिल का एक छाया चित्र तैयार किया और उसमें तकनीकी संशोधन करके चर्चिल के चेहरे पर पड़ी झुर्रियां निकाल दीं. चर्चिल अपनी तस्वीर देखकर भड़क उठे. उन्होंने फोटो छायाकार के मुंह पर फेंक दिया और बोले, "इन झुर्रियों को लाने के लिए मैंने जाने कितने साल बिता दिये और तुमने एक झटके में सबको साफ कर दिया!"**

**—मार्टिन जॉन 'अजनबी'**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

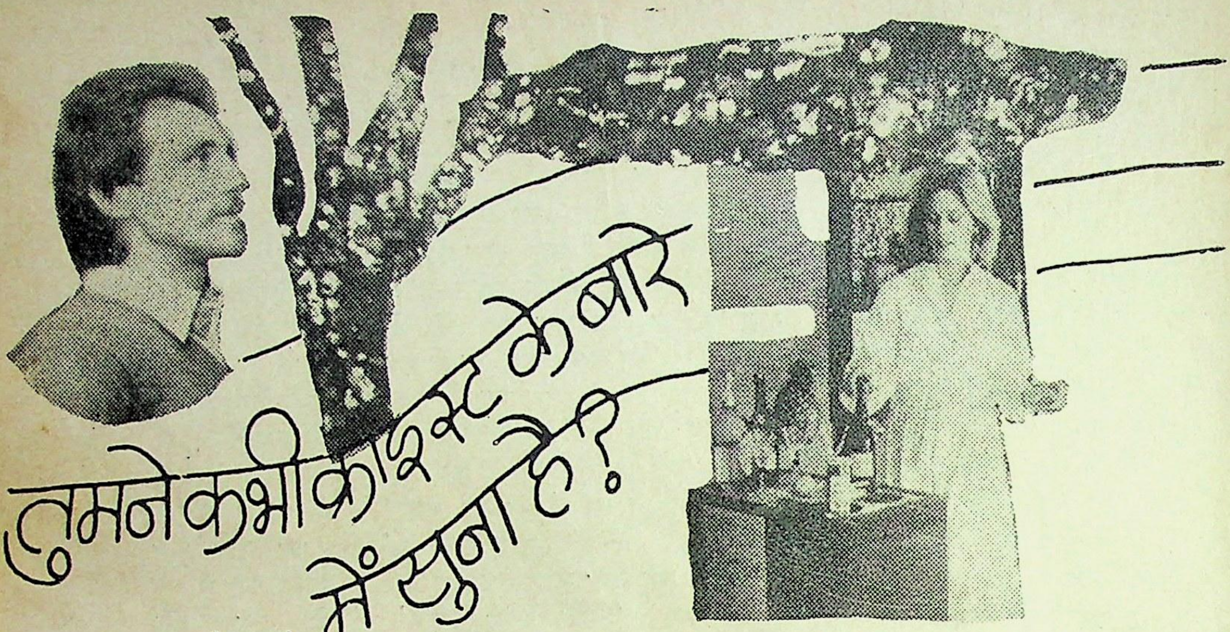

# तुमने कभी क्राइस्ट के बारे में सुना है?

▫ अनातोले फ्रांस

**आ**ज से 1600 साल पुरानी बात है. लेमिया ने इटली के एक समृद्ध घराने में जन्म लिया था. रोम में वह फिलासफी पढ़ने के शौक से आया था, परंतु रोम के भोग-विलास प्रिय समाज में रहते-रहते उसका जीवन भी विलासितामय हो गया. आखिर नौबत यहां तक आ पहुंची कि वह एक ऊंचे कुल की स्त्री लेपिडा से अनुचित संबंध होने के अपराध में पकड़ा गया. सीजर ने उसे देश निर्वासन का दंड दे दिया. उस समय लेमिया ने अपनी आयु के 23 वर्ष पूरे कर चौबीसवें साल में कदम रखा था. अपने निर्वासन के अट्ठारह वर्षों में वह सीरिया, पैलस्टाइन, आर्मीनिया, एंटिओक, जेरुसलम आदि की यात्रा कर आया. सीजर के बाद जब कायस राजगद्दी पर बैठा तो लेमिया ने रोम में प्रविष्ट होने की राज-आज्ञा ले ली और 42 वर्ष की आयु में फिर से रोम आकर रहने लगा. यहां उसने अपनी थोड़ी-सी जायदाद भी बना ली. संसार के थपेड़ों ने उसे अब समझदार बना दिया था.

लेमिया रोम की नारियों की आबरू लेने से बचता था. नौकरी को वह पहले ही तिलांजलि दे चुका था. सार्वजनिक प्रतिष्ठा से वह कोसों दूर भागता था. सबसे अलग एस्क्विलीन से एक छोटे से घर में वह एकांत जीवन व्यतीत कर रहा था. और इसी से उसकी आत्मा संतुष्ट थी. खाली समय में वह अपनी अट्ठारह साल की विश्व यात्रा के संस्मरण लिखा करता था. अपने जीवन के उतार-चढ़ाव का वर्णन करने में उसे आनंद अनुभव होता था. इस निरापद शांत वातावरण में रहते-रहते उसके दिल में बड़े विस्मय और घबराहट के साथ यह अनुभूति जाग उठी कि उसके जीवन का संध्याकाल अब निकट आ पहुंचा है. 20 वर्षों से वह दुबारा रोम में रह रहा है, अब वह बासठ साल का हो चुका है साथ ही बीमारी ने उसका शरीर जर्जरित कर दिया है.

तब उसने समुद्र तट पर रहने का निश्चय किया. वह समुद्र के किनारे के एक बहुत ही रमणीक स्थान पर जा पहुंचा. मगर वहां भी वह एकांत में ही रहता था. यहां तक कि पूरे एक सप्ताह तक वह अपने मकान से बाहर नहीं निकला. उस सुंदर नगर के व्यापक सुख-ऐश्वर्य के दरमियान एक वही गमगीन था.

**ए**क दिन उसे हवाखोरी करने की इच्छा हुई. वह समुद्र-तट के एक ऊंचे पहाड़ी टीले पर जा बैठा. उसने अपनी आंखों से चारों दिशाओं में फैले हुए सौंदर्य को देखा और एक किताब, जिसमें प्राकृतिक सौंदर्य संबंधी कविताएं संग्रहीत थीं, पढ़ना शुरू कर दिया, मगर इतने में एक पालकी के वाहकों ने आवाज दी, "हटो-हटो." यह आवाज सुनकर वह उठ खड़ा हुआ. पालकी पर पर्दा नहीं था. उसमें बड़े-बड़े गद्दों के सहारे भारी शरीर वाला एक पुरुष बैठा था. उसकी आंखों से उदासी और घृणा के भाव झलक रहे थे. उसकी नाक नुकीली थी, ठोढ़ी विचित्र-सी थी और जबड़े मजबूत थे.

प्रथम क्षण में ही लेमिया को यह विश्वास हो गया कि इस व्यक्ति को उसने किसी जगह पहले भी देखा है. उसका नाम जबान पर आने में कुछ क्षण लगे, मगर नाम याद आते ही उसने लपककर कहा, "पोंटियस पाइलेट! तुम यहां कैसे? ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम्हारे दर्शन फिर हुए."

पालकी पर बैठे हुए उस व्यक्ति ने वाहकों को ठहरने का इशारा किया और वह लेमिया की ओर आंखें फाड़-फाड़-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**ऐतिहासिक रोमन साम्राज्य के पतन का कारण उसके सामंतवर्ग की घोर विलासिता तथा परस्पर शत्रुता रही थी. प्रस्तुत है ऐसे दो विलासी सामंतों की कथा जो ईसा के नाम तक से परिचित नहीं थे. नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार की यह कहानी विश्व की श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है.**

कर देखने लगा.

लेमिया ने कहा, "पोंटियस, पिछले बीस सालों ने मेरे बाल सफेद कर दिये हैं, मेरे गाल अंदर धंस गये हैं. शायद इसीलिए तुम अपने मित्र, लेमिया को अभी तक नहीं पहचान पाये." यह सुनते ही पोंटियस बड़ी फुर्ती से अपनी पालकी से उतर पड़ा और उसने लेमिया को अपनी बाहों में जकड़ लिया.

पोंटियस ने कहा, "ईश्वर की कृपा से हम एक बार फिर मिल गये. तुमने मुझे वे बीते हुए दिन, जबकि मैं सीरिया में जूडिया का शासक था, फिर याद दिला दिये. तुम वहां अपने निर्वासन के दिनों को काटने आये थे. मित्रतावश तुमने मेरा जेरुसलम जाने में साथ दिया था, जहां कि यहूदियों ने हमें बहुत परेशान किया था. तुम मेरे पास दस साल तक रहे थे. हम रोम संबंधी चर्चा करके ही दिल को बहला लिया करते थे."

लेमिया ने बड़े उल्लास के साथ उसका पुनः आलिंगन किया और कहा, "दो बातें तो तुम बिल्कुल ही भूल गये. प्रथम यह कि मुझे दंड-मुक्त करवाने की बड़ी कोशिश की थी, दूसरी यह कि आर्थिक सहायता देने में भी तुम उदार थे."

पोंटियस ने कहा, "उसकी चर्चा व्यर्थ है. रोम में वापस आकर मेरा रुपया तुम मय सूद के उतार चुके हो."

लेमिया ने कहा, "मैं तुम्हारा धन वापस करके ही उऋण नहीं हो सकता. खैर, उन बातों को जाने दो. अब अपने हालचाल सुनाओ. यह तो बतलाओ कि ईश्वर ने तुम्हारी उच्चाभिलाषाएं पूरी कर दीं या नहीं? तुम खुश तो हो? तुम्हारे कुटुंब और घर-बार का क्या हाल है?"

पोंटियस ने जवाब दिया, "मैं अब जूडिया से सिसली आ गया हूं. वहां मेरी जमीन है. मैं गेहूं की पैदावार पर ही गुजर करता हूं. मेरी सबसे बड़ी लड़की पोंटिया जो कि अब विधवा है, मेरे साथ घर पर रहती है. ईश्वर की कृपा से मेरी स्मरण शक्ति अभी तक अच्छी है. पुरानी स्मृतियां जरा भी धुंधली नहीं हुईं. मगर, बुढ़ापे के साथ क्षीणताओं का आना अनिवार्य ही है. गठिया से मेरा शरीर जर्जर हो चुका है. अब भी मैं इसी बीमारी के इलाज के लिए फेल्ग्रीन जा रहा हूं. सुना है कि वहां से गंधक के वाष्प उठते हैं, जो गठिया को दूर कर देते हैं."

लेमिया ने कहा, "ईश्वर करे, ऐसा ही हो, मगर गठिया-ग्रस्त होते हुए भी तुम मुझसे अधिक बूढ़े तो नहीं मालूम होते, हालांकि तुम मुझसे दस साल बड़े हो. तुम अब भी मुझसे बहुत अधिक स्वस्थ और ताकतवर मालूम होते हो. तुम्हें इतना स्वस्थ देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई है, मगर तुमने इतनी जल्दी पैन्शन क्यों ले ली? जूडिया की गवर्नरी छोड़कर सिसली के एकांत प्रदेश में क्यों डेरा लगा लिया? जब मैं तुमसे विदा हुआ था तबसे आज तक का अपना इतिहास मुझे सुनाओ. तुम उन दिनों समेरिटा के विप्लव का दमन करने की तैयारी में थे. मैंने तब से तुम्हें नहीं देखा. क्या विप्लव दमन करने में तुम्हें सफलता मिल गयी थी? मैं सब हालात जानना चाहता हूं. तुम्हारे संबंध की प्रत्येक घटना में मेरी दिलचस्पी है."

पोंटियस ने बड़े विषादभरे स्वर में उत्तर दिया, "स्वभाव से ही मैं अपने उत्तरदायित्व को कठोर परिश्रम और असाधारण चुस्ती के साथ निभाने का अभ्यासी था. मगर कुटिलतापूर्ण लोकापवादों ने मेरी सफलता के मार्ग में रोड़े अटकाने शुरू कर दिये. मेरे कठिन श्रम का फल मुझे प्राप्त होने से पहले ही टूटकर बिखर गया. तुमने समेरिटा के विप्लव के संबंध में पूछा है. वे घटनाएं मेरी स्मृति में अब भी कल की बात की तरह ताजी हैं.

"सीरिया के एक प्रभावशाली व्यक्ति ने समेरिटा के लोगों को जिम की पवित्र पहाड़ी पर एकत्र होने का आदेश दिया और कहा कि वह उनके सन्मुख दो पवित्र जहाजों का उद्घाटन करेगा, जो कि उनके पूज्य पुरखों ने कहीं छिपा दिये थे. इसी बात पर समेरिटा में विप्लव की आंधी आ गयी. उनके पहाड़ी पर एकत्र होने से पहले ही मैंने पहाड़ी को घेर लिया. विप्लवकारियों ने पहाड़ी के निचले प्रदेश पर अधिकार कर लिया था. मैंने उन्हें सीख देने के लिए, उनके कुछ नेताओं को पकड़कर फांसी पर लटका दिया. मगर तुम्हें मालूम ही है कि सीरिया के गवर्नर विटेलियस की मुझ पर शुरू से ही क्रूर दृष्टि थी. समेरिटा के लोगों को यह बात मालूम थी, इसलिए मुझसे नाराज होकर उन्होंने विटेलियस की शरण ली. विटेलियस ने उनकी शिकायतें बड़े ध्यान से सुनीं और जूडिया की गवर्नरी अपने मित्र मार्सेलस को सौंपकर मुझे सम्राट के सामने कैफियत पेश करने को भेज दिया. क्रोध और अपमान से भरे हुए दिल से मैंने जहाज से तट पर कदम रखा. भाग्यवश समुद्र तट पर उतरते ही सम्राट टिबेरियस का प्राणांत हो गया. तब मैं न्याय की भिक्षा लेने के लिए कायस के दरबार में पहुंचा, मगर कायस का एक अभिन्न मित्र 'एग्रिपा' सीरिया में रहता था. वह विटेलियस का मित्र था. इसलिए कायस अपने मित्र के मित्र की बात न टाल सका. मेरे लिए भी अब अमिट दुर्भाग्य के सामने मस्तक नवा देने के सिवाय क्या उपाय शेष रह गया था? वहां से मैं सिसली के इस एकांत प्रदेश में जीवन के शेष दिन पूरे करने के लिए चला आया. मेरी लड़की पोंटिया यदि मेरे साथ न आ जाती तो मेरी इहलीला कभी की समाप्त हो चुकी होती. यहां आकर मैं


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेती करने लगा और अब ईश्वर की कृपा से अच्छा गुजारा कर लेता हूं. मगर मेरा जीवन अब समाप्ति के निकट आ पहुंचा है. विटेलियस और मुझमें वास्तविक दोषी कौन था, इसका निर्णय काल ही करेगा."

लेमिया ने कहा, "पोंटियस, निस्संदेह तुमने जो कुछ किया, रोम के हित के लिए किया, मगर तुमने विद्रोहियों का दमन करने में कुछ सख्ती जरूर की थी. तुम्हें याद होगा कि जूडिया में भी मैं तुम्हें अनेक बार जरा नरमी से शासन करने को कहा करता था."

पोंटियस ने जवाब दिया, "नरमी? किसके लिए?—यहूदियों के लिए? असंभव है! तुम मनुष्य जाति के दुश्मन उन यहूदियों के बीच में बहुत अरसे तक रहे हो, मगर मुझे कहना ही पड़ेगा कि तुमने उन्हें समझने में भूल की है. मुझे जब जूडिया की गवर्नरी सौंपी गयी थी तो मैं बड़ा सावधान था कि मेरा शासन नरमी और दया से रहित न होने पाये. ईश्वर मेरा साक्षी है—मैंने सदैव नरमी और दया से शासन करने की कोशिश की, मगर मेरे संकल्प का क्या परिणाम हुआ? पहली बार जब विप्लव हुआ तो लेमिया, तुम मेरे पास ही तो थे. उस समय हमारी फौज जेरुसलम के लिए तब्दील कर दी गयी थी, मगर जेरुसलम के धर्माचार्यों ने सीजर की प्रभुता स्वीकार करने की बजाय ईश्वर के अनुशासन में रहना अधिक पसंद किया था. विद्रोही और धर्माचार्य एक हो गये. और दोनों ने मिलकर विप्लव खड़ा कर दिया. मैंने अपनी सेना को हुक्म दिया कि वह पैने भालों से विप्लवियों का मुकाबला करे, मगर यहूदियों ने मेरी फौजों के भालों की परवाह न कर आगे बढ़ना जारी रखा. कुछ ने भाले की नोक पर गर्दन रखकर खुशी-खुशी मृत्यु को निमंत्रण दिया. मेरी उस समय की पराजय के भी तुम साक्षी थे ही. विटेलियस ने मुझे अपनी सेनाएं वापस ले जाने का आदेश दिया. उस पराजय का दोष मेरा नहीं था. मैं ईश्वर को साक्षी रखकर कह सकता हूं कि मैंने न्याय और कानून की कभी अवहेलना नहीं की, कभी अवहेलना नहीं होने दी, मगर मैं अब बूढ़ा हो गया हूं. अब मेरी पराजय का कोई प्रतिकार नहीं रहा. मेरी कैफियत अब कौन सुनेगा."

लेमिया ने कहा, "वही मनुष्य दूरदर्शी है, जो कि भविष्य की संदिग्ध घटनाओं से न तो बहुत आशाएं करता है, न उनसे भयभीत होता है. हमें इससे क्या मतलब कि भविष्य में लोग हमारे संबंध में क्या कहेंगे? हमारा सच्चा साक्षी तो हमारा अपना हृदय है. हमारी अंतरात्मा स्वयं भले-बुरे की परीक्षा कर लेती है. उसी पर भरोसा रखकर कर्तव्य-कर्म करते जाना चाहिए. अपने और अपने सुहृदजनों के आत्मसम्मान की रक्षा में ही संतोष मानना चाहिए. शासन में अनुकंपा और मुलामियत का बहुत थोड़ा स्थान है. मनुष्य की कारुणिक प्रवृत्ति, जिसकी दार्शनिक लोग सिफारिश करते हैं, सार्वजनिक व्यक्तियों के लिए निरुपयोगी है."

पोंटियस बोला, "अच्छा तो आज यह विचार-विमर्श यहीं तक सही. मुझे सूर्यास्त से पूर्व गंधक के चश्मों पर अवश्य पहुंच जाना चाहिए. मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मुझे आज अपना एक पुराना मित्र मिला है. आप कृपाकर कल वहीं, हमारे यहां ही भोजन कीजिएगा. मेरा घर शहर के परले पार, समुद्र के किनारे पर है." यह कहकर पोंटियस अपनी पालकी पर चढ़कर रवाना हो गया.

दूसरे दिन नियत समय पर लेमिया पोंटियस के मकान पर हाजिर हो गया. ड्राइंगरूम में केवल दो कोच पड़े थे. पहले दोनों ने एक दूसरे की बीमारियों का हाल पूछा. तब पुनर्मिलन पर परस्पर बधाइयां देकर उन्होंने समुद्र तट की प्रशंसा में कुछ समय व्यतीत किया. उसके बाद लेमिया ने स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित राज्याधिकारियों की, जो कि समुद्र-तट पर चहल-कदमी करने आया करते थे, तारीफ की. मगर बूढ़े पोंटियस को उनसे नफरत थी. तदनंतर वे देश में होने वाले नये-नये वैज्ञानिक व शिल्प संबंधी आविष्कारों की चर्चा करने लगे. दोनों ने कायस द्वारा निर्मित एक अद्भुत पुल की प्रशंसा जी खोलकर की.

पोंटियस ने एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा, "मैं भी इसी तरह के सार्वजनिक उपयोग के बहुत से काम करना चाहता था. जब अपने पिछले जन्म के पापों की बदौलत में जूडिया का गवर्नर नियुक्त हुआ था. तो मैंने जेरुसलम में

लघुकथा

# ऋण का धंधा

■ सुदर्शन वशिष्ठ

मंगतू उस दफ्तर का नाम भी नहीं जानता था. वहां कौन 'साब' है, यह भी उसने नहीं जाना. वह जानता था तो सिर्फ एक बाबू को. बाबू—ठिगना-सा, मोटा-मोटा-सा, बिल्लौरी आंखोंवाला. जब कुर्सी पर बैठा होता, कुर्सी भरी-भरी-सी लगती.

उसी बाबू ने कागज पूरे कर उसे दो हजार का ऋण दिलवाया था. मुर्गीखाना खोलने के लिए. मंगतू ने सौ चूजे लिये, पशुशाला में दड़बा बनाया, चारा लिया. दो सौ बिल्लौरी आंखों वाले ने लिया, सौ प्रधान को दिया और दो सौ मुर्गीखाने में लग गये. शेष पंद्रह सौ छह महीने लंबे पड़कर डकारा. चूजे जैसे-जैसे बढ़ते गये, वैसे-वैसे ही मरते गये.

ठीक छह महीने बाद बिल्लौरी बाबू याद आया. अब की बार मंगतू ने नंबरदार को पकड़ा. बिल्लौरी को पांच सौ दिये. उसने पांच हजार दिलवाये. मंगतू ने एक गाय ली तीन हजार में, शेष से रोज खीर का सामान आने लगा. दूध पीया डटकर और चैन की नींद ली.

इस ऋण ने उसे ऐसा नाकारा बना दिया कि अब दिन भर आराम से पसरा रहता. घरवाली भी कुछ न कहती. कमाकर जो लाया था ढेरों. कभी बाजार जाता तो 'मसालेदार' लाना न भूलता. धीरे-धीरे पैसा चुकने लगा, ऋणों की किश्तें आयीं तो फिर बिल्लौरी बाबू अलादीन का चिराग बन याद आया.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध जल पहुंचाने की एक स्कीम बनायी थी."

इसके बाद यहूदियों की समालोचना शुरू हुई. पोंटियस ने यहूदियों के विरुद्ध जहर उगलना शुरू किया. यहूदियों की नीचता का उसने बहुत ही वीभत्स चित्र खींचा. उसने कहा कि यहूदी कभी अच्छे हो ही नहीं सकते. उन पर ईश्वर का शाप है, जो कभी टल नहीं सकता, परंतु लेमिया उतना अनुदार नहीं था. वह यहूदियों को अन्य मनुष्यों से भिन्न प्रकृति का नहीं समझता था. पोंटियस की कठोर आलोचना सुनकर उसने कहा, "मेरे प्यारे मित्र, यहूदियों के प्रति तुम्हारी तीव्र आलोचना का कारण समझना कठिन नहीं है. तुम्हें उनके संबंध में ऐसा ही अनुभव हुआ होगा. मगर मैं जेरुसलम में यहूदियों के बीच में रहा हूं. मुझे भी बहुत निकट से उनके चरित्र के अध्ययन का अवसर मिला है. मैं उनकी बहुत-सी वे खूबियां देख सका हूं, जो कि शायद तुम नहीं देख पाये. मैं ऐसे अनेक यहूदियों से मिला हूं, जो कोमलता के मूर्तिमान अवतार थे और जिनके आडंबर शून्य शिष्टाचार तथा हृदय की स्वच्छता ने मुझे स्पार्टन न्यायाधीशों का स्मरण दिला दिया था. पोंटियस, इसका तो तुम्हें स्वयं भी अनुभव है कि किस तरह उन निर्दोष यहूदियों ने तुम्हारे भालों की नोक के आगे शिकायत का एक शब्द भी जबान पर लाये बिना, आत्म-बलिदान कर दिया था. मैं यह सब इसलिए कह रहा हूं कि मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में संयम और उदारता को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए. इस संबंध में तो मैं स्वयं अपने को अनुदार ठहराता हूं. मैं यह अनुभव करता हूं कि मेरे दिल में यहूदियों के लिए कभी वास्तविक सहानुभूति पैदा नहीं हुई. यद्यपि मैंने स्वयं देखा है कि यहूदी स्त्रियां बहुत भली हैं. मैं जब जवान था तो सीरिया की युवतियों ने मेरे हृदय को बहुत बार चंचल बना दिया था. उनकी आकृति में एक अपूर्व आकर्षण था."

पोंटियस ने यहूदियों की प्रशंसा बड़ी अधीरता से सुनी और कहा, "मैं यहूदी युवतियों के जाल में आने वाला आदमी कभी नहीं रहा. तुम्हारी इस कमजोरी को भी मैंने कभी पसंद नहीं किया. तुम्हारी इस प्रवृत्ति के प्रति अपनी घृणा को मैंने महज इसलिए दबाये रखा कि तुम रोम की एक भले घर की बहू के साथ दुराचार करने की पहले ही सजा भुगत रहे थे. विवाह एक पवित्र बंधन है, रोमन साम्राज्य की आधार-शिला इसी पवित्रता पर स्थित है."

पोंटियस यह सब कहता जा रहा था, मगर लेमिया कुछ नहीं सुन रहा था. उसका ध्यान किसी और जगह था. वह किसी घटना की याद में विचित्र भाव से मुस्करा रहा था.

एक क्षण की चुप्पी के बाद उसने बड़े गंभीर स्वर में, जो कि हर पर्दे पर ऊंचा होता जाता था, कहना शुरू किया, "सीरिया की वे परियां किस अदा से नाचती थीं. जेरुसलम की एक यहूदिन का, लैंप की उस धुंवली-सी रोशनी में घुंघरुओं से नाच अभी तक मेरे प्राणों में बसा हुआ है. उसकी कमर कमान हो गयी थी. सिर पीछे की तरफ गिर गया था, मानों वह उसके केशपाश का भार नहीं उठा सकता था. उसकी अलसायी-सी आंखों में लालसा, उपालंभ और चपलता मूर्तिमान होकर तैर रही थी. मैं उसके उन्मत्त नाच पर मुग्ध था. उसका स्वर कुछ कुंठित होते हुए भी इतना मधुर था कि मैं छाया की तरह उसके पीछे-पीछे घूमने लगा. वह जिधर जाती, मैं उधर ही उसके साथ हो लेता. वह जिस संगति में घिरी रहती, मैं भी उसी में उठता-बैठता. मगर एक दिन अकस्मात् ही वह लुप्त हो गयी. मैंने उसके बाद उसे नहीं देखा. मैं उसको गली-गली, शहर-शहर खोजते हुए हार गया, मगर वह नहीं मिली. फिर एक बार अचानक ही मुझे मालूम हुआ कि वह एक युवक के गेलिलियन संप्रदाय की अनुयानिनी बन गयी है. युवक का नाम था—'जीसस क्राइस्ट.' वह नजरेथ से आया था. बाद में वह किसी अपराध में क्रास पर बलि चढ़ा दिया गया—मुझे नहीं मालूम किस अपराध में. पोंटियस क्या तुमने उस युवक जीसस क्राइस्ट के बारे में कुछ सुना है?"

पोंटियस पाइलेट ने भौंहें सिकोड़कर, शायद स्मृतिपट के आखिरी पर्दे को खोलने के लिए, माथे तक हाथ ले जाते हुए जवाब दिया, "जीसस?—नजरेथ का जीसस क्राइस्ट?—नहीं, मुझे स्मरण नहीं कि मैंने उसके बारे में कहीं कुछ भी सुना हो." □

● अनुवाद : चंद्रगुप्त विद्यालंकार

---

किश्त न दे पाने पर प्रधान ने भी लताड़ा, "महाजन का कर्ज भला सरकार का कर्ज बुरा होता है. महाजन तो फिर भी आदमी है. मिन्नत खुशामद कर लेंगे. सरकार तो निराकार पिशाच है, जो दिखाई नहीं देता, सब चूस लेता है एक बार."

अब...? बिल्लौरी बाबू की शरण गया फिर से मंगतू. बाबू ने अबके उसे साब के पास हाजिर किया. साब, बहुत कमजोर, पतला-सा इनसान, जैसे उधार दे-देकर सूख गया हो. वह उसे अपलक देखता रहा. उसकी आंखों में रौब नहीं था, एक लाचारी या बेबसी पता नहीं कुछ ऐसा हो था. बाबू व साब, दोनों ने गिटपिट-गिटपिट की अंग्रेजी में. बाबू उसे बाहर ले आया.

"एक ही रास्ता है अब..." बाबू ने फाइल निकालते हुए कहा, "तुम्हें अब दो-दो किश्तें देने को हो गयी हैं. अब हम तुम्हें एक बड़ा कर्जा दे देते हैं. तुम पहले दिये दोनों कर्ज पूरे वापस कर दो और बड़े कर्ज से कुछ काम धंधा चला लो ताकि बड़ा कर्जा भर सको. इससे हमारी वसूली भी हो जायेगी और आगे कर्जा भी दे दिया जायेगा, हमारे दोनों ही टारगेट पूरे. अब तो ऐसा ही चलता है भाई. सरकार कहती है, कर्जा भी जरूर दो और वसूली भी जरूर हो तो हमने यही तरीका निकाला है."

मंगतू ने पिछले दोनों कर्जे एकमुश्त अदा कर दिये और कोट की भीतरी जेब के ऊपर ठीक तरह से सेफ्टी पिन लगा कर घर आते ही हलुवा बनवा डाला. □

● वरिष्ठ भाषाधिकारी, अस्पताल रोड, मंडी (हिमाचल)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

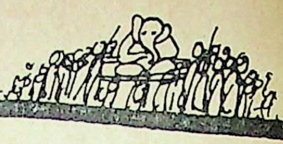

# झांकी

**सत्येन कुमार**

"निकल जा हरामजादे, इसी वक्त निकल जा, नहीं तो मैं... नहीं तो मैं..." गन्नू के बाप के मुंह से झाग निकलने लगे थे और साथ ही नशे के उबाल के कारण उफनती हुई उसकी आवाज में शब्द खड़े नहीं हो पा रहे थे, "मैं तेरी... मुंह तोड़ दूंगा तेरा साले. तूने बहुत खून पिया है मेरा."

गन्नू कुछ क्षण तो चुपचाप खड़ा रहा. उसी तरह टांगें फैलाये, अपने सफेद बैल-बॉटम की जेबों में हाथ डाले, अपने बाप की गठानदार, गीली लकड़ियों जैसी टांगों को लड़खड़ाते हुए देखता हुआ. वह जानता था कि उसका बाप अब गिरने ही वाला था. और जैसे ही वह हुआ उसने अपनी गर्दन झटककर माथे पर घिर आये अपने बालों को पीछे फेंका और मुड़कर तेजी से कमरे से बाहर निकलता हुआ बोला, "रहना कौन चाहता है इस नरक में... जब देखो साली मुझी पे उतरती है सारी दारू..." कमरे और आंगन को लंबे-लंबे कदमों से पार करता हुआ वह गली में आ गया. अपने पीछे उसने आंगन का दरवाजा बड़े जोर से बंद किया और फिर कीचड़ से भरी उस अंधेरी गली में वह धीरे-धीरे अपना पांव जमाकर चलने लगा. अपना सफेद बैल-बॉटम उसने आज बड़ी मुश्किल से सुखाकर इस्तरी किया था.

गली पार करके जब तक वह बजरिया के चौराहे तक पहुंचा तब तक उसका मूड ठीक हो गया था. वैसे भी गन्नू अपने बाप की बातों पर ध्यान नहीं देता था. और फिर यह सब तो आये दिन होता ही रहता था. दारू मिल गयी तो गुस्सा गन्नू पर उतरता था और जब नहीं मिलती थी तो गन्नू की सौतेली मां पिटती थी.

"क्यों गन्नू सेठ, क्या रोल है," नुक्कड़वाली पनवाड़ी की दूकान पर खड़ा हुआ बनवारी गन्नू को देखते ही उसकी तरफ लपका. पास आकर वह एक नजर ऊपर से नीचे तक डालकर मुस्कराते हुए बोला, "क्या बात है यार, भगवान कसम आज तो गजब ढा रहे हो, क्या कुछ परोगराम है? लगता है फंस गयी प्यारे!"

"कौन?" गन्नू ने बैल-बॉटम की पिछली जेब से अपना कंघा निकाला और अपने बाल जमाते हुए बोला.

"अबे वो ही तेरी चित्ती... क्या नाम है उसका?"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अबे छोड़ यार. . .तुझे तो हर वक्त मस्ती सूझती है," गन्नू पनवाड़ी की दूकान की तरफ चलता हुआ बोला और फिर हंसने लगा, "लगता है फिर चली गयी तेरी रद्धो अपने मरद की झुग्गी में!"

गन्नू पनवाड़ी के शीशे में देखते हुए अपने बाल जमाने लगा था. बनवारी ने एक नजर आसपास डाली फिर पनवाड़ी से बोला, "जुम्मन खां, दो चारमीनार तो दो यार. . ."

"पैसे कौन देगा खां?" जुम्मन ने पान की पीक सटककर बड़ी सूखी आवाज में पूछा. बनवारी ने नजरें चुराते हुए गन्नू की तरफ इशारा कर दिया.

"क्यों खां, गन्नू खां, पैसे होंगे न. . . ?"

"तुम तो कमाल करते हो जुम्मन खां, क्या साले दो चारमीनार के पैसे भी नहीं निकलेंगे हमारे पास?" गन्नू को थोड़ा ताव आ गया क्योंकि उसका खयाल था कि आज उसकी ड्रेस देखकर जुम्मन भी झटके में आ जायेगा.

"भाई मियां, वो बात नईं है," जुम्मन के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी थी, "बुजुर्गों ने कहा हैगा कि मियां दौलत का कोई एतबार नहीं होता. कभी रहती है कभी नहीं रहती, और खां मियां गन्नू . . . माशाअल्ला आज तो बिल्कुल. . . क्या कहते हैंगे उसे, अमिताभ बच्चन लगरिये हो खां," जुम्मन

**आप उन लोगों को जानते हैं जो उदार, सहिष्णु धर्मभीरु होने जैसे तमाम तरह के मुखौटे तो अपने चेहरे पर लगाये रहते हैं मगर धर्म होता है जिनके लिए महज भ्रष्टाचार, बेईमानी, धनसंचय, ऐयाशी करने का माध्यम. . . .? ऐसे ही लोगों को बेनकाब करती एक रचना—**

ने दो चारमीनार की सिगरेट उसे देते हुए कहा. गन्नू का सारा गुस्सा एकदम खतम हो गया. आखिर जुम्मन ने कह ही दिया. वह पहला आदमी था जिसने बात पकड़ी थी. गन्नू ने बहुत सोच-समझकर सिलवायी थी ये ड्रेस—सफेद बैल-बॉटम, लाल कमीज और सफेद जरकिन. हाई-हील का काला जूता तो उसके पास पहले से था ही. जिस रोज पूरी ड्रेस तैयार हुई थी, उसे पहनकर ही वह फिल्म चौथी बार देखने गया था. जब पर्दे पर अभिताभ बच्चन का वही ड्रेस पहनकर नाचने वाला सीन आया था तो उसने हाल के अंधेरे में ही अपने आस-पास देखा था. लेकिन कोई उसकी तरफ नहीं देख रहा था—सबकी नजरें पर्दे पर थीं. उसने अपने दिल को समझाया था कि एक तो अंधेरा था और दूसरे सवा-रुपये वाली क्लास में ऐसे लोग ही कहां आते हैं जिनका ध्यान ऐसी बातों की तरफ जाता हो. और ध्यान जाता भी होगा तो साले जलते हैं हमेशा. इस वक्त भी तो वही हुआ था. इतने मार्के की बात साले बनवारी ने नहीं कही, वो तो जुम्मन का ही ध्यान गया. और ठीक भी है, जुम्मन की हैसियत बहुत ऊंची है. दूकान से रोजाना बीस-तीस रुपये लेकर उठता है. शहर के बड़े-बड़े लोग पान खाने आते हैं उसके पास. विलायती सिगरेट रखता है अपनी दूकान में!

सिगरेट जलाकर वे दोनों सड़क पार करके चौराहे के दूसरी तरफ आकर खड़े हो गये.

गन्नू चुप था. वह सोच रहा था कि सिगरेट के पैसे देने के बाद उसकी जेब में एक रुपया अस्सी पैसे थे. मामला जरा गड़बड़ हो गया था. अगर उसकी जेब में कुछ और पैसे होते तो आज वह 'मिष्ठान मंदिर' जाता. वहां पर एक-से-एक छोकरियां आती थीं. लेकिन साली बहुत मंहगी जगह थी. चाय का गिलास ही अस्सी पैसे का देता है साला. . . लेकिन खैर आज यहीं सही. अभी तो शो छूटने में टाइम था. पास वाले हॉल में आजकल पिक्चर भी सही लगी हुई थी, औरतें बहुत आती हैं देखने. . . उसने मुड़कर चाय के होटल में सामने ही लगी हुई घड़ी की तरफ देखा. साढ़े आठ बजने वाले थे.

"यार ये बता. . ." गन्नू ने कुछ क्षणों बाद बनवारी से पूछा, "कि अपने किशन सेठ कहां गये हुए हैं आजकल?"

"बंबई." बनवारी ने जल्दी से कहा.

"लौटेंगे कब, कुछ मालूम है?"

"शुक्रवार को. . .यानी कल ही तो है शुक्रवार. . . कल

आ जायेंगे."

"पक्का?" गन्नू ने पूछा. "तुझे कैसे मालूम?"

"अरे भैया, अपना बड़ा खास रोल है किशन सेठ के यहां," बनवारी ने मुस्कराते हुए उसकी तरफ अपनी गर्दन झुकायी और धीरे-से बोला, "रद्धो को बुक कर रक्खा है किशन सेठ ने. . . शुक्रवार की रात के लिए. गोया कि चुनांचे अपना एक दस का पत्ता सीधा है कल!"

जवाब में गन्नू बोला कुछ नहीं लेकिन एक बेफिक्री उसके चेहरे पर फैल गयी.

"क्यों? क्या तूने भी कुछ अटका रक्खा है?" बनवारी ने बड़ी हिफाजत से अपनी बची सिगरेट पकड़कर पूछा.

"अबे नहीं यार. . ." गन्नू ने कुछ चिढ़कर कहा, "अपन इस धंधे में नहीं हैं. ये काम तो बस तेरे ही बस का है."

"तो साले फिर पूछ क्यों रहा है किशन सेठ को? कोई जीजा तो है नहीं वो तेरा या मेरा?"

"अब लपेट मत यार बिना बात को," गन्नू ने अपनी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगरेट के टोटे को सड़क पर डालकर अपने जूते से अच्छी तरह मसलते हुए कहा, "मैं तो असल में, गणेश चतुर्थी के बारे में सोच रहा था. अगले शुक्रवार को गणेश जी बैठेंगे न!"

"तो यूं कह न साले," बनवारी हंसते हुए बोला, "कि अपने रोल का इंतजार कर रहा है! बात तो साली वोई है... मैं रद्धो को बिठा देता हूं... किशन सेठ के यहां ... तू गणेश जी को! अब इसके बाद क्या होता है, ये तो किशन सेठ का रोल है." और वह ठहाका लगाकर हंस पड़ा.

गन्नू को बनवारी की बात अच्छी नहीं लगी. लेकिन वह यह भी जानता था कि बनवारी उससे न सिर्फ उम्र में बड़ा था बल्कि उसने बहुत दुनिया देखी थी. हालांकि उसे बनवारी का गणेश जी के बारे में ऐसी बातें करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था, लेकिन वह बनवारी से झगड़ा नहीं कर सकता था. सारे मौहल्ले भर में बस वह ही ऐसा आदमी था जिसके साथ गन्नू की पटती थी. गन्नू जानता था कि बनवारी उसका दोस्त नहीं था लेकिन फिर... दोस्त उसका था ही कौन?

"चलो यार, जरा चौक तक चलते हैं," बनवारी ने उसके कंधों पर हाथ रखते हुए कहा, "मजा नहीं आ रहा यहां..."

गन्नू को गणपति से बहुत लगाव था. एक तो उसका खुद का नाम ही गणेश था—गणेश प्रसाद सोनकिया. दूसरे सारे मौहल्ले में, बल्कि एक तरह से सारे शहर में उसकी जो भी धाक थी वह गणपति के कारण ही थी. साल में जब गणेश चतुर्थी से डोल ग्यारस तक का हफ्ता आता था तो गन्नू की जिंदगी में बहार आ जाती थी. पिछले तीन सालों से गन्नू के मौहल्ले यानी भोई वाली गली के गणेश जी को फर्स्ट प्राइज मिल रहा था. शहर भर में इस हफ्ते के दौरान लगभग दो-सौ झांकियां बैठती थीं और उनमें फर्स्ट प्राइज लेना कोई खेल नहीं था. और यह सब कमाल सिर्फ गन्नू का था. अकेले उसके दम का जम्हूरा था कि गणेश जी तीन साल से लगातार फर्स्ट आ रहे थे. यह ठीक था कि पैसे का इंतजाम ज्यादातर किशन सेठ ही करते थे लेकिन गन्नू जानता था कि किशन सेठ को गणपति में ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी. उनका हिसाब दूसरा था और बिल्कुल साफ था. उस हफ्ते भर के लिए किशन सेठ लगभग पांच हजार रुपया खर्च करते थे जिसमें से आधा तो वह लौंडियों में वसूल कर लेते थे. बनवारी ने उसे बताया था कि झुग्गी-झोंपड़ीवाली लौंडियों का रेट आमतौर पर 100 रुपये रात के हिसाब से चलता था. किशन सेठ उस हफ्ते के दौरान हर रोज दो या तीन लौंडियों को नुक्कड़वाली हवेली में—जहां झांकी सजती थी, मंगवाते थे, और अपने यार-दोस्तों के साथ ऐश करते थे. बाकी आधा पैसा उन्हें रोजाना की आरती और दान-पेटी से मिल जाता था. बल्कि पिछले साल तो क्योंकि मौहल्ले में गुप्ता-जी के यहां चतुर्थी के दिन ही लड़का पैदा हुआ था इसलिए उन्होंने दान-पेटी में 501 रुपये डाले थे. पिछले साल की पेटी में से कुल जमा साढ़े चार हजार रुपये निकले थे. किशन सेठ इतने खुश हो गये थे कि डोल-ग्यारस के दिन जब भोई वाली गली के गणेश जी को फर्स्ट प्राइज के 501 रुपये मिले थे तो वो उन्होंने गन्नू को दे दिये थे. पिछले साल वाकई बहुत जोरदार मामला रहा था. गन्नू ने भी सारे हफ्ते में कुल मिलाकर लगभग दो-हजार रुपये कमाये थे.

सराफा चौक पहुंचते-पहुंचते दो बज गये थे. हालांकि भूख के मारे गन्नू के पेट में जलन हो रही थी लेकिन फिर भी वह चाहता था, दोपहर के खाने के लिए उठने से पहले ही किशन सेठ को पकड़ ले. पैसे का इंतजाम जरूरी था. बस आज ही का दिन बचा था, कल चतुर्थी थी. चौक में मुड़ते ही उसे किशन सेठ दूकान पर बैठे नजर आ गये और वह अपनी सारी भूख और थकान भूल गया. यह भी अच्छा ही था कि इस वक्त दूकान पर कोई ग्राहक नहीं था. किशन सेठ मलमल का कुर्ता और पाजामा पहने गद्दी पर गाव तकिये के सहारे लेटे हुए पान चबा रहे थे. पास ही उगालदान रक्खा था और उनके हाथों में एक किताब थी—'सच्चे सैक्स अपराध.'

"हांआं.. .क्यों गन्नू, क्या हालचाल है बेटा?" किशन सेठ ने अपने गले में पड़ी सोने की चेन में लटकटी हुई कुरेदनी से अपने दांत कुरेदते हुए पूछा.

"सब ठीक है, दादा," गन्नू ने खिसियाहट भरी मुस्कान से कहा, "बाकी तो सब काम हो गये, बस अब दो बातों में आपको कष्ट करना पड़ेगा."

"क्या?" किशन सेठ ने उबासी लेकर पूछा.

"एक तो दादा... वो पब्लिसिटी वालों को टेलिफोन घुमा दो, पिक्चर के लिए और दूसरे अखबार वालों को खड़खड़ा दोगे तो पहले दिन से ही फोटू आने लगेंगे अपनी झांकी के."

"अच्छा ठीक है, कर दूंगा, और बोल?"

## पाठ

परमार्थ व पुरुषार्थ की महिमा बखानकर मास्साब कक्षा से छात्रों को अपने क्वार्टर पर ले गये. लॉन की मिट्टी खोदने, वर्षों से अटी-फंसी नाली का कीचड़ साफ करने, चादरों, तकियों की धुलाई से छात्रों ने परमार्थ व पुरुषार्थ का भावार्थ भली भांति समझ लिया.

दो दिन पश्चात उपस्थिति लेते समय किशन की अनुपस्थिति पर मास्साब चौंके. "किशना कहां है!"

"सर! वो तो अंधी चाची के लिए दवा लाने बाजार गया है." किसी ने बताया.

पसीने में सराबोर किशन कक्षा में आया तो मास्साब कुपित होकर बोले, "पढ़ाई के समय आवारा घूमते रहते हो. शर्म नहीं आती." उनकी उंगलियां किशन के कान से खेल रही थीं. □

▣ हसन जमाल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और दादा... मूर्ति वाले को बुक कर आया हूं. बारह मूर्ति ले रहे हैं, तो रोज नयी झांकी हो जायेगी." गन्नू ने अपने बैल-बॉटम की पिछली जेब से कागजों और चिंदियों की एक गड्डी निकाली और उसमें कुछ ढूंढने लगा.

"किराया कितना ले रहा है?"

"सौ रुपये मूर्ति कह रहा था वो," गन्नू ने एक पर्ची निकालकर किशन सेठ के सामने रखते हुए कहा, "मैंने कह दिया कि गणपति की इतनी बड़ी मूर्ति खरीद रहे हैं तो बाकी के किराये में पचहत्तर से एक पैसा ऊपर नहीं देंगे. असल में साले जानते हैं न कि अपने को फर्स्ट प्राइज मिलता है तो सालों के भाव बढ़ जाते हैं. दादा, ये लिस्ट है झांकियों की... बिल्कुल नयी हैं सब की सब."

"पिचहत्तर के हिसाब से भी नौ-सौ तो ये ही हो गये. अबे इतनी मूर्तियों की क्या जरूरत है?" किशन सेठ ने बिना पढ़े ही वह पर्ची गन्नू की तरफ बढ़ाते हुए कहा.

"असल में दादा... सारा खेल मूर्तियों का ही तो होता है... आप देखो तो सही ये लिस्ट... ऐसी-ऐसी झांकियां सोची हैं इस बार कि आंखें खुल जायेंगी सबकी."

"ठीक, है, ठीक है," किशन सेठ ने एक सिगरेट निकालकर जलाते हुए कहा, "तो अभी कितने दे दूं तुझे?"

"बीस नोट दे दो, दादा," गन्नू ने कान खुजाते हुए जवाब दिया, "थोड़ा-थोड़ा सबको दे दूंगा तो सब तसल्ली से बैठे रहेंगे."

"ठीक है, ठहर जा थोड़ी देर, अभी घर चलता हूं."

किशन सेठ कुछ देर तक अपनी आंखें बंद किये चुपचाप सिगरेट के कश खींचते रहे. फिर उन्होंने जरा नीची आवाज में पूछा, "क्यों बे, कोई नया पठ्ठा तैयार हुआ है इस साल या नहीं, भोईपुरे में?"

गन्नू सोचने लगा. एकदम-से उसकी आंखों के सामने बसंती की सूरत नाच गयी—चित्ती जवान तो वह पिछले साल ही हो गयी थी लेकिन सोलहवां उसे इसी साल लगा था. कैसी खिल आयी है इस साल—बिल्कुल अनार की तरह फूट रही है देह! अब तो उसके चेचक के दागों पर भी नजर नहीं जाती, इतनी खूबसूरत लगती है...

"अब सोचने की क्या बात है इसमें?" किशन सेठ की आंखें खुल गयी थीं और उसे देख रही थीं—"जवान लौंडिया तो अंधे को भी सूझ जाती है."

"दादा, हैं तो बहुत-सी..."

"अबे... बहुत-सी तो हैं... तू तो बिल्कुल... है यार." किशन सेठ थोड़ा-सा उठकर गावतकिये के सहारे टिक कर बैठते हुए कुछ झुंझलाकर बोले, "अबे मैं नये माल की बात कर रहा हूं... बिल्कुल कोरी सुराही...!"

"वो ही सोच रहा था दादा," गन्नू बुदबुदाया और फिर चुप हो गया. चित्ती? नहीं! वह ऐसी है भी नहीं, उसने सोचा.

किशन सेठ की नजरें उसके चेहरे पर जमी रहीं. गन्नू का चेहरा खाली तराजू के पलड़ों की तरह झूल रहा था. फिर उन्होंने एक लंबा कश लेकर अपनी नाक से धुंआ निकालते हुए अपनी आवाज और नीची कर ली, "ये जो बनवारी है... इसकी बहन की क्या उमर होगी?"

एक पल के लिए गन्नू सहम-सा गया. लेकिन साथ ही उसके कलेजे का वह खिंचाव-सा दूर हो गया. उसने जल्दी से सोचकर जवाब दिया, "पंद्रह के आस-पास होगी."

"क्या बात है!" किशन सेठ ने एक चुटकी बजाकर सिगरेट की राख झाड़ते हुए कहा और फिर चुप हो गये.

कुछ देर बाद उन्होंने अपनी सिगरेट बुझा दी और बोले, "ये काम तुझे ही करना पड़ेगा गन्नू. असल में बनवारी भी कुछ कहेगा तो नहीं लेकिन उसी की बहन है न... इसलिए जरा ठीक नहीं रहेगा... चल, तुझे पैसे दे दूं!"

भोईपुरा में छठी झांकी सजी हुई थी और सारा शहर उमड़ा पड़ रहा था. हर साल की तरह गन्नू की सूझ-बूझ और झांकियों ने शहर में तहलका मचा दिया था. पहले दिन से ही अखबारों में हर रोज की झांकी के दो-दो, तीन-तीन फोटू छपने शुरू हो गये थे और पूरी रिपोर्ट में आधे से ज्यादा जगह में गन्नू की झांकियों की तारीफ छपती थी. एक अखबार ने तो पिछले ही दिन गन्नू की भी फोटो छाप दी थी और उसके नीचे लिखा था—इन उत्कृष्ट झांकियों के निर्माता और कल के एक अवश्यंभावी कलाकार की झांकी—श्री गणेश प्रसाद सोनकिया. गन्नू को जब एक लौंडे ने अखबार लाकर दिखाया तो कबूतर की तरह उसकी गर्दन अकड़ गयी थी. थोड़ा बुरा उसे जरूर लगा था कि उसकी तस्वीर में उसकी कमीज का रंग लाल की बजाय स्लेटी-सा आया था.

"गन्नू भैया ये लो," दस-बारह साल का एक लड़का दौड़ता हुआ स्टेज पर चढ़ा, जहां गन्नू झांकी बदल रहा था और एक बंडल गन्नू के हाथ में देते हुए बोला, "ये छप के

## भारत में सुपत्नी नहीं होती

अंतिम विनोद आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के मुख से 1976 में राजकमल प्रकाशन में सुना.

शीला संधु, नामवर सिंह तथा एक-दो और लेखक बैठे थे. पंडितजी ने कहा—"यह विदेशी छात्राएं भी बड़ा गड़बड़ करती हैं. पोलैंड की एक छात्रा मुझसे मिलने वाराणसी गयी. मैं लखनऊ गया हुआ था. उसने दिल्ली लौटकर मुझे पत्र लिखा—मैं आपके दर्शन हेतु वाराणसी गयी थी. आपके दर्शन तो नहीं हो सके, किंतु आपकी 'सुपत्नी' से भेंट हो गयी. समझते हैं कि भारत में 'सुपुत्र' होता है तो 'सुपत्नी' भी होती होगी. बताइए शीलाजी! इस देश में कोई एक भी पत्नी, कभी 'सुपत्नी' हुई है?" ☐

▣ हरिशंकर परसाई



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गये हैं. . . अपने पर्चे!"

गन्नू ने अपने हाथ की हथौड़ी और कीलों को तख्त पर रखकर बंडल खोला और उसका चेहरा खिल उठा. रंग-बिरंगे कागजों पर छपे उन पर्चों में से एक उठाकर उसने अटक-अटककर पढ़ना शुरू किया, 'डबल प्रोग्राम,' सबसे ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में छपा हुआ था और उसके नीचे लिखा था, 'भोईपुरा गणेश उत्सव कमेटी का जनता की फर्माइश पर डबल प्रोग्राम!'

भाइयो और बहनो,

भगवान श्री गणेश जी की कृपा से आप लोगों के मनोरंजन के लिए इस साल डोल ग्यारस पर हमारी कमेटी डबल प्रोग्राम पेश करती है. इन आखिरी तीन दिनों में मशहूर कलाकार अभिताभ बच्चन की फिल्में दिखायी जायेंगी और पिक्चर के बाद जिंदा नाच-गाने और कव्वाली भी पेश की जायेगी. दूसरी खुशखबरी यह है कि आप लोगों के फायदे के लिए इन आखिरी तीन दिनों में एक लॉटरी भी चालू की है जिसका दाम केवल एक रुपया है और जिसमें हजारों रुपये के ईनाम मिलेंगे. कौन जाने श्री गणेश जी की कृपा आप पर ही हो जाये. इसलिए जल्दी कीजिए और भोईपुरा गणेश कमेटी की लॉटरी का टिकट जरूर खरीदिये. जय गणपति. सबसे नीचे लिखा था—धर्मसेवक गणेश प्रसाद सोनकिया सेक्रेट्री, भोईपुरा गणेश उत्सव कमेटी.

"बिल्कुल फिट है!" पर्चा पढ़ने के बाद गन्नू खुश होकर बोला और फिर उसने आवाज देकर कई लौंडों को बुलाया और थोड़े-थोड़े पर्चे सबको देता हुआ बोला, "लो बे, ये ले जाओ और बांट दो बाजार में. देखो गली के हरेक घर में जाना चाहिए पर्चा, समझ गये?"

"अच्छा गन्नू भैया," लौंडों ने एक आवाज में कहा.

"बस तो फिर फूटो अब. . ." गन्नू ने कहा और अपने काम में व्यस्त हो गया. हाथों के साथ ही अब उसका दिमाग भी तेजी से चलने लगा था. अगर ये दांव लग गया, उसने सोचा—तो हजारों के वारे-न्यारे हो जायेंगे. उसने पांच हजार टिकिट छपवाये थे और अगर आधे भी बिक गये तो जिंदगी बन जायेगी. गन्नू ने तय कर लिया था इस डोल-ग्यारस के बाद जब भी मुहूर्त निकलेगा, चित्ती से शादी कर लेगा. वह भी मान गयी थी. आजकल वह रोजाना आ रही थी. . . बिल्कुल ही भोली है. . . लेकिन किस्मत बदल जायेगी उसकी . . . ईनाम देने का प्रोग्राम उसने अच्छी तरह से सोच लिया था. पहला ईनाम हजार रुपये का होगा जो चित्ती को मिलेगा और चार-पांच और ईनाम फर्जी टिकटों के हवाले करके पैसा पूरा वापस आ जायेगा. जैसी भीड़ आजकल आ रही थी, कौन छान-बीन करने वाला था. कल तो कम से कम नहीं तो तीन-चार हजार लोग आये होंगे. आरती में ही ढाई हजार रुपये आये थे जिसमें से हमेशा की तरह उसने दो-तिहाई ही किशन सेठ को दिये थे.

इसके पहले कि गन्नू कुछ बोल पाता, किशन सेठ ने गद्दे पर उनके दूसरी तरफ बैठी विमला से कहा था, "विमलो! जरा बना के दे एक. . . आज अपने पट्ठे ने कमाल कर दिया. पिला इसको भी." और नशे में झूमते हुए किशन सेठ गन्नू की गर्दन सहलाने लगे थे.

विमला ने एक बार हंसकर गन्नू की तरफ देखा और फिर अपने पास रक्खी बोतल उठाकर उसका गिलास बनाने लगी. विमला बनवारी की भाभी थी लेकिन गन्नू किशन सेठ के यहां उससे अक्सर मिलता रहता था और इसलिए अब धीरे-धीरे उसकी शर्म खत्म हो गयी थी. किशन सेठ ने कुछ महीनों से विमला को अपनी नौकरानी बनाकर रख रक्खा था.

"अभी क्या चल रहा है नीचे. . . गन्नू," कुछ देर बाद किशन सेठ ने अपने गिलास में से एक घूंट लेकर पूछा.

"फिल्म चल रही है दादा. . ."

"अबे इस खेल का तो अब तू उस्ताद हो गया बेटे," किशन सेठ ने सुट्टा खींचकर कहा, "अब जरा कुछ काम की चीज और सीख बेटे."

गन्नू को याद आया—बनवारी की बहन चंपा! उसने एक बार जल्दी से विमला की तरफ देखा और फिर आवाज नीची करके बोला, "दादा. . . अभी मौका नहीं लगा. असल में साली अकेली मिलती ही नहीं है."

"कौन, चंपा. . .?" किशन सेठ ने बड़े जोर से हंसकर उसकी पीठ पर हाथ मारते हुए कहा, "अबे उसे छोड़ अब, तेरे भरोसे रहता तो. . . उसकी फिक्र छोड़ दे अब तू. . . चंपा पे तो मैंने विमला को लगा दिया है. . . क्यों विमलो रानी. . . कब ला रही हो अपनी कुंआरी ननदिया?"

विमला हाथ में गिलास लेकर उठी और बोली, "चौदस को. . . सेठ जी, उसी दिन ठीक रहेगा."

"और वो भग्गो? वो नहीं आयेगी?" किशन सेठ ने चौकन्नी आंखों से गन्नू के चेहरे को घूरते हुए पूछा.

"नहीं. . . आयेगी न, दादा," गन्नू ने गिलास मुंह से

# लघुकथा

## दानशीलता

■ संतोष खरे

फैक्ट्री के बड़े मालिक फैक्ट्री का निरीक्षण करने आये. यह देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई की फैक्ट्री का काम निरंतर प्रगति पर है तथा प्रबंधकों और श्रमिकों के बीच कोई विवाद नहीं. उन्होंने घोषणा करनी चाही कि श्रमिकों को कंबल तथा स्टाफ कर्मचारियों को सूट उनकी ओर से दिये जायें. उन्होंने स्थानीय प्रबंधक से चर्चा की. इस चर्चा के दौरान स्टाफ के तीन कर्मचारी भी मौजूद थे.

प्रबंधक ने सोचा कि कंबल पर सौ रुपये प्रति कंबल तथा सूट पर तीन-चार सौ रुपये प्रति सूट खर्च होगा.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा, "सर, श्रमिकों को कंबल देना तो ठीक है. जाड़े का मौसम है और कंबल पाकर वे खुश हो जायेंगे, पर स्टाफ के सदस्यों को सूट दिये जायेंगे तो श्रमिक असंतुष्ट हो सकते हैं कि स्टाफ के लोगों को अधिक कीमती वस्तु दी गयी. . . . वैसे भी स्टाफ कर्मचारियों को वेतन पर्याप्त है. वे स्वयं सूट बनवा सकते हैं. . . मेरे खयाल से. . ."

"ठीक है, जैसा ठीक समझो." मालिक ने कहा.

अगले दिन कंबल पाकर श्रमिकों ने बड़े मालिक की जय-जयकार की और उधर स्टाफ के सदस्यों में बड़े मालिक की दानशीलता की भरपूर प्रशंसा हो रही थी, जो उन्हें सूट देना चाहता था, किंतु स्थानीय प्रबंधक के कारण नहीं दे सका. बड़े मालिक ने संतुष्ट होकर सोचा, हमारा मैनेजर बहुत होशियार है. फैक्ट्री निरंतर विकास करेगी. □

● धवारी, सतना-485001 (मध्यप्रदेश)

लगाते हुए जवाब दिया, "असल में पिक्चर देख रही है अभी मां के संग. पिक्चर के बाद आयेगी. मैंने कह दिया है."

डोल-ग्यारस का दिन था. चौक में तिल रखने की जगह नहीं थी. शहर भर के लगभग दो सौ से ऊपर डोले चौक में जमा हो गये थे और विसर्जन की शोभा-यात्रा की तैयारी हो रही थी. यात्रा चलने से पहले क्योंकि झांकियों पर ईनाम मिलने वाले थे इसलिए चौक तक पहुंचने वाले चारों तरफ से रास्तों पर डोले और झांकियां ही खड़ी हुई थीं. हर डोले के पास अपना लाउड-स्पीकर था जिस पर लगातार फिल्मी गाने बज रहे थे. बीच-बीच में झांकीवालों की तरफ से ऐलान किया जाता था, "भाइयो और बहनों, आपके सामने जो यह सुंदर झांकी खड़ी हुई है इसमें गणेश जी अपने पिता बम-बम भोले शंकर जी से लड़ रहे हैं. आपकी सेवा में यह झांकी 'चोली-दामन कटपीस सेंटर' की तरफ से पेश की गयी है." शहर की सब मशहूर दूकानें अपनी-अपनी झांकियों के लिए इसी तरह के ऐलान कर रही थीं. अलबत्ता शोर इतना था कि कुछ भी सुनना या समझना असंभव था.

मेन रोड से चौक में घुसते ही, सामने की तरफ एक काफी ऊंचा स्टेज बना हुआ था जिस पर चौक के अधिकतर रईस दूकानदार, बड़े मंदिर के महंत जी, कुछ विधायक तथा मंत्रीजी इत्यादि बैठे थे—झांकियों को ईनाम बांटने के लिए. जो भी झांकी चौक में आती थी, इसी सड़क से आती थी और स्टेज पर बैठे लोग उसे देखकर अपनी राय अपने-अपने कागजों पर नोट कर लेते थे. स्टेज के नीचे भारी भीड़ जमा थी. झांकियों के मालिक अपनी झांकियां स्टेज वालों को दिखाकर कहीं जगह ढूंढकर खड़ी करवा आते थे और फिर स्टेज के नीचे जमा हो जाते थे.

चौक में झांकियों के पहुंचने के लिए तीन बजे तक का समय तय किया गया था. उस के बाद ईनाम बांटे जाने थे फिर शोभा यात्रा शुरू होनी थी. अब पौने-तीन बज रहे थे. गन्नू की झांकी अभी तक नहीं पहुंची थी. स्टेज पर बैठे हुए किशन सेठ को भी अब थोड़ी चिंता होने लगी थी. किशन-सेठ को विश्वास था कि गन्नू की झांकी को इस साल फिर फर्स्ट प्राइज मिलने वाला था. कमाल का लौंडा है सचमुच, किशन सेठ ने अपनी सोने की कुरेदनी से दांत कुरेदते हुए सोचा और तभी उनकी नजरें, भीड़ का शोर सुनकर सामने की तरफ उठ गयीं. उनके चेहरे पर किसी खलीफा जैसी मुस्कराहट उभर आयी.

सामने की सड़क से गन्नू की झांकी चौक में दाखिल हो रही थी. नीचे खड़ी भीड़ में भूचाल-सा आ गया था. तालियों की गड़गड़ाहट से सारा चौक गूंजने लगा था. थोड़ा शोर कम होने पर लाउड-स्पीकर पर गन्नू की आवाज आयी, "भाइयो और बहनों. . . आपके इंतजार की घड़ियां खत्म हुईं, पेश है मोईपुरा गणेश उत्सव कमेटी की तरफ से यह झांकी—कालिया मर्दन!"

भारी-भरकम ट्रैक्टर की ट्राली पर सजी हुई झांकी अब स्टेज के सामने आकर खड़ी हो गयी थी. गणेश जी कालिया नाग से लड़ रहे थे. गणेश जी के हाथ का भाला रुक-रुककर कालिया की तरफ बढ़ता था और कालिया झागों के एक समुद्र में खड़ा बार-बार अपना फन झुकाता था. झांकी के अंदर वैसे तो गणेश जी का भाला और कालिया का फन पटकना ही इतनी सफाई का करतब था कि लोग हतप्रभ हो उठे थे. लेकिन गन्नू का असली कमाल था कालिया के चारों तरफ बेशुमार झागों का उफान. एक काफी बड़े टब में गन्नू ने 'सर्फ' का घोल भर दिया था और उसमें एक ट्यूब डालकर उसे साइकिल में हवा भरने वाले पंप से जोड़ दिया था. एक लौंडे को उसने पंप पर लगा दिया था. जैसे ही गणेश जी का भाला उठता, कालिया का फन आगे झुकता था—इतना काम बिजली की मोटर से हो रहा था. और जैसे ही कालिया का फन पीछे हटता, वह लौंडा पंप पर दो-तीन हाथ चलाता था और एकदम से बहुत से झाग उठकर झांकी से बाहर सड़क पर गिरने लगते थे. स्टेज के सामने जैसे ही गन्नू के इशारे पर कालिया के मुंह से झाग निकले, तालियों के मारे चौक की इमारतें हिलने लगीं. यहां तक कि स्टेज पर बैठे लोग भी अपने आपको तालियां बजाने से रोक नहीं पाये. लाउडस्पीकर पर गन्नू की आवाज फिर आ गयी थी—"तो मेहरबान . . . ये है कालिया मर्दन. झांकी तो आप समझ ही गये होंगे—- आपके सेवक गणेश प्रसाद सोनकिया ने बनायी है. लेकिन आप यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि गणेश जी की इतनी सेवा और हिंदू धर्म की इतनी शान रखनेवाला हमारे शहर में बस एक ही आदमी है. और वो है धर्मप्राण, धर्मात्मा—हम सबकी आंखों के तारे. . . श्रीमान किशनलाल जी सेठ." तालियां फिर बज उठीं. स्टेज पर बैठे किशन सेठ अब लापरवाही से अपना दांत कुरेदते हुए किसी से बातें करने में मशगूल हो गये थे.

गन्नू उसी बीच कूदकर झांकी से उतर गया और झांकी आगे बढ़ गयी. उसके उतरते ही अखबार के रिपोर्टरों ने उसे



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घेर लिया. जैसे ही कैमरों की फ्लैश लाइट कौंधनी शुरू हुई, गन्नू ने अपनी सफेद जरकिन की जेब में से चारमिनार गोल्ड का पैकेट निकालकर एक सिगरेट सुलगा ली. बावजूद इसके कि गन्नू पिछली दो रातों से सोया नहीं था और रह-रहकर उसकी आंखों के सामने पतंगे से उड़ने लगते थे, वह अपने चारों तरफ खड़े लोगों और अखबार वालों से मुस्करा-मुस्कराकर इत्मीनान से बातें कर रहा था. अचानक भीड़ में कुछ खलबली-सी हुई और गन्नू ने देखा––दो अंग्रेज––एक आदमी और एक औरत अपनी गर्दन पर कैमरे डाले, शहर के एक बड़े अखबार के रिपोर्टर के साथ उसकी तरफ पहुंचने के लिए रास्ता बना रहे थे.

कुछ क्षणों बाद ही वे दोनों गन्नू के सामने खड़े थे और उनके बराबर शहर के बड़े अखबार का रिपोर्टर खड़ा अपने दांत निपोर रहा था.

इसी बीच उस अंग्रेज बुड्ढे ने अपने साथ वाले हिंदुस्तानी रिपोर्टर से कुछ कहा जिसे सुनकर वह रिपोर्टर कुछ देर तक सोचता रहा फिर गन्नू से बोला, "गणेश, ये साहब फ्रांस से आये हैं. . . पैरिस से. . . बहुत बड़े अखबार के लिए काम करते हैं ये. और आजकल ये हिंदुस्तान सिर्फ गणेश उत्सव के लिए आये हुए हैं. ये तुमसे कुछ पूछना चाहते हैं. इनका सवाल ये है कि. . . तुम इन झांकियों में इतनी मेहनत करते हो, गणेश उत्सव के पूरे दस दिनों में बिल्कुल पागलों की तरह काम करते हो. . . आखिर इसका मूल कारण. . .?"

"लेकिन ये तो गणेश जी के लिए है. गणपति बप्पा के लिए यह सब हम लोग नहीं करेंगे तो क्या ये करेंगे!" गन्नू ने आसपास की भीड़ की तरफ देखकर हंसते हुए कहा. सब लोग हंसने लगे. उस हंसी से गन्नू ने हौसला लेकर कहा, "अच्छा, खैर एक विलायती सिगरेट तो पिलवा दो इसी बात पर!" भीड़ फिर हंसने लगी.

रिपोर्टर ने हंसते हुए उन दोनों को समझाया, "उसका कहना यह है कि गणेश जी को सिर्फ हिंदू ही समझ सकता है या कि कहें कि एक अध्यात्म मानस और उसकी अस्मिता की एक संरचना-विशेष के ही संदर्भ में गणेश जी को समझा जा सकता है. श्री गणेश प्रसाद सोनकिया यह कहना चाहते हैं कि आपके अधिकतर प्रश्नों का उत्तर केवल एक ही है––हिंदुस्तान में किसी हिंदू परिवार में जन्म लीजिये. और हां, श्री गणेश प्रसाद आपकी एक फ्रेंच सिगरेट पीना चाहते हैं."

उन दोनों ने रिपोर्टर की बात सुनकर एक साथ ही अपने कंधे उचकाये. और आखिरी बात के जवाब में उस औरत ने अपने कुर्ते की जेब से 'गेलाउज' का एक पैकेट निकालकर, उसमें से एक सिगरेट ऊपर खींचकर गन्नू की तरफ बढ़ाया.

गन्नू ने एक नजर. . . आसपास की भीड़ पर डालकर वह सिगरेट खींची और अपने होंठों में दबा ली. ये सीन तो शायद अमिताभ बच्चन के साथ किसी फिल्म में भी नहीं हुआ होगा, गन्नू ने सोचा––अंग्रेज औरत सिगरेट पेश कर रही है. . . जियो बेटा गन्नू. . . फिट कर दिया तुमने जिंदगी को आज.

स्टेज के ऊपर लगे लाउड-स्पीकर से आवाज आने लगी थी, "देवियो और सज्जनो. . . हर वर्ष की भांति. . ."

लोगों का हुजूम धीरे-धीरे चुप होने लगा. फ्रैंच रिपोर्टर और उसकी फोटोग्राफर चारों तरफ से भीड़ के धक्के खाते हुए बाहर निकलने की कोशिश कर रहे थे. गन्नू इत्मीनान से उस इंपोर्टेड सिगरेट के सुट्टे खींचने लगा.

स्टेज पर अब मंत्री जी का भाषण शुरू हो गया था––

". . . आपको जानकर खुशी होगी कि हमारे शहर के धार्मिक समाज ने इस वर्ष से सबसे अच्छी झांकी के लिए प्रथम पुरस्कार की राशि बढ़ा कर एक हजार एक रुपये कर दी है. . . . और अब मैं आपको यह खुशखबरी देते हुए कि इसवर्ष भी सर्वोत्तम झांकी के लिये प्रथम पुरस्कार 'भोईपुरा गणेश उत्सव कमेटी' द्वारा प्रस्तुत 'कालिया मर्दन' को मिला है, श्री गणेश प्रसाद सोनकिया से स्टेज पर आने का अनुरोध करता हूं."

गन्नू ने इत्मीनान से अपने बाल जमाये. अपनी सफेद जरकिन और लाल कमीज के कालर को खड़ा किया और फिर चारों तरफ खड़ी भीड़ पर एक बार नजर घुमाकर स्टेज की तरफ कदम बढ़ाये.

विसर्जन के बाद लौटते-लौटते ग्यारह बज गये थे. गन्नू की हालत काफी पतली थी. हालांकि दोपहर को जब फर्स्ट प्राइज मिलने के बाद जुलूस चौक से चला था, तो गन्नू में सारी थकान के बावजूद नयी ताकत आ गयी

## गवाही

▣ डॉ. राजेंद्रकुमार शर्मा

**राज बदल गया था, राजा भी, लेकिन राज्य के बेईमान और सूदखोर कतई नहीं बदल पाये थे. तभी एक बेईमान सूदखोर ने पुनः एक भले-ईमानदार आदमी पर झूठा आरोप लगाते हुए कि उसने उससे बिना लिखा-पढ़ी के दस हजार रुपये लिये थे और अब वापस नहीं कर रहा है, राजा के पास गुहार की. गुहार पर दोनों को दरबार में हाजिर होना पड़ा. राजा ने सूदखोर से प्रश्न किया––"तुमने जब इस आदमी को दस हजार रुपये दिये थे, उस वक्त तुम्हारी दूकान में तुम्हारे अलावा और कौन था?"**

**सूदखोर बहुत ही शातिर तो था ही, अतः सोचने का अभिनय करते हुए बोला, "महाराज, उस वक्त मेरी दूकान में शकर की चार बोरियां, वनस्पति के पांच टिन, लांजी चावल के सात थैले, गेहूं-मैदा के दस थैले और छोटा-मोटा दीगर सामान आदि . . ."**

**"यह सब गवाही के लिए दरबार में ला सकते हो तुम?"**

**"जी महाराज."**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और उसी नशे में वह सब कुछ खींच ले गया था.

अभी काफी काम बचे थे. . . उसने आंखें मूंदकर सोचना शुरू किया—बारह बजे लॉटरी का रिजल्ट देना था. दरी-कनात वालों का हिसाब तो खैर कल हो जायेगा. लेकिन चित्ती को आज पकड़ना जरूरी था. आज बिल्कुल सही मौका था. विसर्जन के लिए गये लोग रात को दो-दो, तीन-तीन बजे तक लौटते थे. चित्ती भी उसी बहाने तीन-चार बजे तक रुकने वाली थी. गन्नू की आंखों में एक क्षण के लिए वह अखबार वाली अंग्रेज औरत घूम गई. फिर उसकी जगह चित्ती की तस्वीर ने ले ली—लाल नायलान की धोती और काला ब्लाउज पहने. थकान भूलकर वह फिर खड़ा हो गया. और हवेली के दरवाजे की तरफ कुछ ही दूर गया था कि एकाएक उसकी सांस रुक गयी. वह लपककर पास ही तनी एक कनात के पीछे छिप गया और देखने लगा.

हवेली के आंगन में दायीं तरफ वाले जीने से चित्ती उतर रही थी लाल नायलान की धोती और काला ब्लाउज पहने. उसने अपनी धोती सिर के ऊपर से लेकर घूंघट-सा डाल रक्खा था और काफी तेज कदमों से चलती हुई वह हवेली से बाहर निकल गयी.

"मादर. . ." गन्नू के दांत किटकिटा उठे. कुछ क्षणों तक उसे कुछ भी नहीं सूझा. वहां से फिर वह वापस स्टेज के पिछवाड़े उसी तख्त पर आकर बैठ गया.

कुछ देर बाद उसका गुस्सा कुछ ठंडा हुआ. फिर उसे लगा कि अब किशन सेठ के पास ही चलना चाहिए. वैसे भी उसे जाना तो था ही एक बार क्योंकि आज का हिसाब देना था. और अब उसे लॉटरी के रिजल्ट की भी जल्दी नहीं थी. कल भी हो सकता था वह काम. और अच्छा ही हुआ नहीं तो साले हजार रुपये भी नाली में जाते. .. लॉटरी के बारे में अब बदले हुए हालात को सोचकर गन्नू का रहा-सहा मूड भी ठीक हो गया.

**सा**मने गद्दे पर किशन सेठ बैठे हुए थे. नंगे बदन, बस एक तहमद लपेटे. गन्नू को देखते ही उठकर गावतकिये के सहारे बैठते हुए खिलखिलाकर बोले, "अरे आओ. . . आओ मेरे लाल. . . मेरे शेर. . . आ इधर आ. .. कमाल कर दिया तूने तो बेटा. .. . मालूम है तुझे, मैंने तो आज सिंगार ज्वैलर्स वालों से सट्टा लगा रक्खा था-पांच हजार का कि अपनी झांकी फर्स्ट आयेगी या नहीं? पूरे पचास नोट रखवा लिये लाला जानकीदास से. तेरी कसम मजा आ गया!"

"दादा. . ." गन्नू ने नजरें झुकाकर कुछ सोचते हुए कहा, "वो आज का हिसाब. . ." और उसने अपनी सफेद जरकिन के अंदर वाली जेब से नोटों की दो गड्डियां निकालकर उनके सामने रखते हुए कहा, "पौने चार हजार तो ये हैं. . . आज के चढ़ावे के और ये एक हजार एक. . .फर्स्ट प्राइज के."

किशन सेठ की आंखें उनकी अंगूठी में लगे हीरों की तरह चमक उठीं, "पौने चार हजार! अबे क्या सच कह रहा है. . . कसम भगवान की तूने तो आज यार गजब ढा दिया. . . पता नहीं पैसे को आज क्या हो गया है. . . सुबह से साला बह रहा है इसी तरफ. . .जियो बेटा गन्नू." उन्होंने गिलास उठाकर एक घूंट लिया, "पैसा छोड़. . .आज तो ये लग रहा है कि कुछ और क्यों नहीं मांग लिया ऊपरवाले से."

अचानक उनका ध्यान अपने पास पड़े नोटों की गड्डियों पर गया. उन्होंने बड़ी वाली गड्डी उठाकर गद्दे के नीचे रख दी और फर्स्ट प्राइज वाली गड्डी गन्नू को देते हुए बोले, "ये तेरे हैं बेटा. . . रख ले. . ."

"नहीं दादा. . . इतने नहीं. . ." गन्नू के मुंह से निकला.

"अबे रख ले. . . मेहनताना समझ के ही रख ले. . ." किशन सेठ दांत कुरेदते हुए हंसते हुए बोले, "वैसे भी आज की रात काफी मेहनत करनी है तुझे अभी."

गन्नू जब हवेली से नीचे उतरा तो सुबह के चार बज रहे थे. हवेली के आंगन में सन्नाटा था. बाहर बिछी हुई दरियों पर मौहल्ले के बहुत से लौंडे और लोग सो रहे थे. बिजली के बड़े बड़े बल्ब चारों तरफ से उन दरियों और स्टेज पर लगी झांकी पर रोशनी फेंक रहे थे. झांकी के चारों तरफ हजारों छोटे-छोटे रंगीन बल्ब जल रहे थे. गन्नू दीवार से टिक कर खड़ा हो गया. उसकी आंखें नशे और थकान से झपकी जा रही थीं. सचमुच बहुत मेहनत करवायी थी किशन सेठ ने आज उससे. चंपा तो खैर ठीक थी नयी लौंडिया थी लेकिन विमला तो साली कुतिया है. बिल्कुल चूसकर रख दिया साली ने. गन्नू ने अपनी आंखें मूंद लीं.

सामने हवेली का आंगन सुनसान पड़ा था. उस मुर्दा सन्नाटे में, दूर स्टेज पर गणेश जी कालिया नाग के सामने खड़े थे. खामोश और निहत्थे. □

● सिमसिम, 40 न्यू कॉलोनी, ईदगाह हिल, भोपाल

---

**"तो कल ले आओ."**

**दूसरे दिन सूदखोर ने सारा सामान ठेलों में भरवाया और सोचता हुआ दरबार की तरफ चल दिया कि महाराज आज उसको दस हजार रुपये अवश्य दिलवा देंगे, क्योंकि एक बार पहले भी महाराज ने दूकान के किवाड़ों से गवाही लेकर एक निरपराध भलेआदमी से, उसको पांच हजार रुपये दिलवाये थे. अब के वह कोई बीस हजार का मामला 'फिट' करेगा ताकि . . .**

**राजा एक साथ इतना सामान देखकर बहुत खुश हुआ और सूदखोर की तरफ सहानुभूति से देखकर बोला भी, "हम इस सामान से गुप्त गवाही लेंगे. सामान यहीं रहेगा. अगर सामान ने तुम्हारे पक्ष में गवाही दी तो तुमको खबर भिजवा दी जायेगी."**

**सूदखोर हकलाकर बोला, "लेकिन महाराज, ये...ये बेजुबान सामान गवाही कैसे...क्या देगा?"**

**'देगा...वैसे ही," राजा ने व्यंग्य से मुस्कराते हुए कहा, "जैसे पिछली बार तुम्हारी दूकान के किवाड़ों ने गवाही दी थी और तुमको पांच हजार रुपये दिलवाये थे." और उठकर भीतर चला गया. □**

● 611, परदेशीपुरा, इंदौर (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


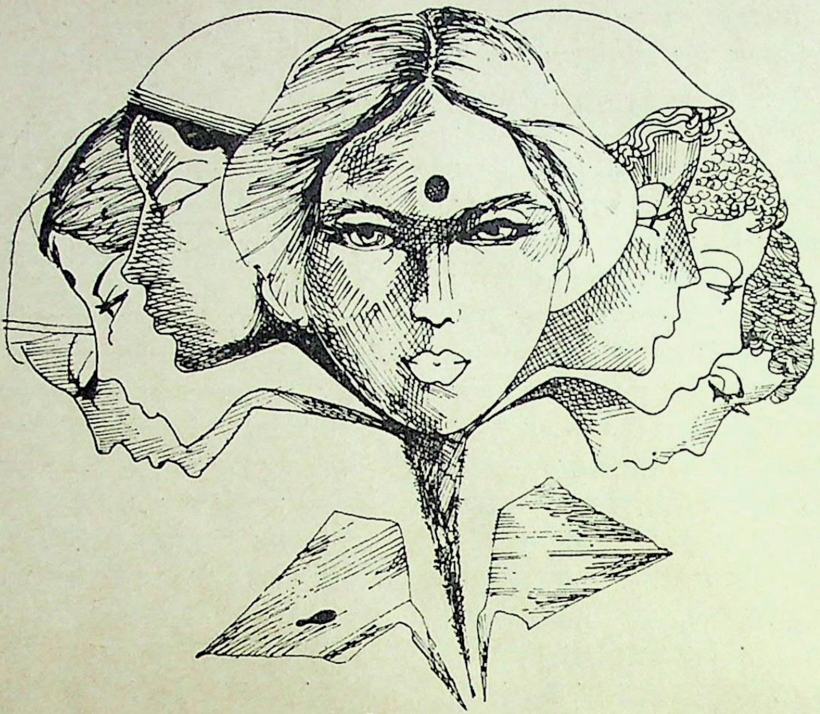

# समाज में नारी की स्वीकृति, नई प्रेरणा, नई जागृति

**नारी की अनकही भावनाओं की बहुमुखी अभिव्यक्ति**

नारी सिर्फ मां, बेटी, बहू, पत्नी या बहन ही नहीं, कुछ और भी है। नारी का खुद अपना एक अस्तित्व है, अपनी निगाह है। आज की नारी सामाजिक अपमान और अन्याय के विरुद्ध लडने को कृत-संकल्प है। पर यह लड़ाई शब्दो का खेल भर नही है जैसा कि चालू पत्रिकाए पढ़ने से लगता है। **वामा** सिर्फ कागजी सुर्खियो पर नही जाती, वह स्त्री की निगाह से यथास्थिति की बिल्कुल ताज़ा तस्वीर पेश करती है, जो एकदम अनूठी है।

विषय चाहे घर-परिवार हो या देश-विदेश;
हस्त-शिल्प हो या खेल की दुनिया,
साहित्य और कला हो या सैर-सपाटा;
विज्ञान हो या फिल्म-जगत;
नारी-तन की जानकारी हो या नारी-मन की;
बच्चों का पालन-पोषण हो या स्वयं अपने भविष्य का निर्माण।

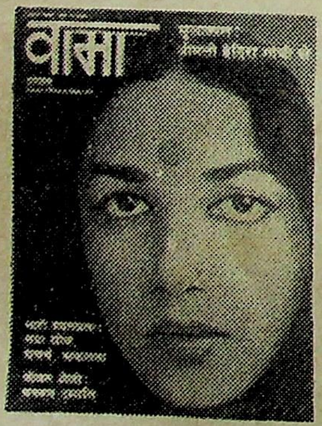


**वामा** नारी के हर विषय की सर्वांगीण प्रेरणा है

वामा

विचारशील महिलाओं की विशिष्ट पत्रिका

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS-D/1113/84/A




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा दुखांत यही है कि उसने जनसाधारण की बुनियादी जरूरतों के नाम पर पूंजी को इतना अधिक महत्व दे दिया है कि इंसान की दूसरी उपलब्धियों पर से उसका ध्यान ही दफा हो गया है... 'कथा-सूत्र' का एक और आयाम--**

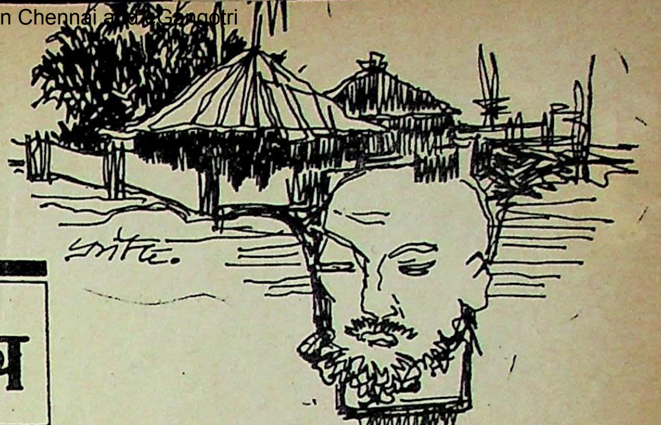

# कथा-सूत्र

# निर्धनता केवल धन की ही नहीं होती

▣ राकेश वत्स

"जी नहीं, पैसे की तो कोई कमी नहीं है. कार, बंगला, नौकर-चाकर, सब कुछ है मेरे पास. लेकिन तबीयत हर वक्त सुलगती-सी रहती है. न ठीक से नींद आती है और न भूख लगती है. हर वक्त यही लगता रहता है कि सारी दुनिया मेरी दुश्मन है. जी हां, पत्नी और बेटे-बेटियां भी. कई बार तो आत्महत्या करने को जी उतावला हो उठता है!"

यह एक करोड़पति का एक मनोचिकित्सक के सामने सम्मोहित अवस्था में किया गया आत्मस्वीकार है जिसने इलाज के बीच ही मात्र चालीस वर्ष की उम्र में नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर ली थी.

सवाल उठता है कि धन की दृष्टि से संपन्न उस आदमी के पास आखिर किस चीज की कमी थी जिसने उसे इस तरह के कायरता पूर्ण आचरण को अपनाने के लिए मजबूर किया? जवाब बड़ा मुख्तसर-सा है--'चरित्र की!' वह आदमी पैसे का धनी जरूर था लेकिन चरित्र की दृष्टि से बहुत निर्धन था.

चरित्र का असली मतलब वह नहीं है जिसे समाज बिना सोचे-समझे अबौद्धिक रूप से, सदियों से ढोता चला आ रहा है. चरित्र में आदमी के वे कारनामे नहीं आते जिन पर उसका अख्तियार नहीं, यानी कि जिन पर रोक लगाना उसकी शक्ति से बाहर है. नारी और पुरुष के वैध आकर्षण की गोपनीयता चरित्र नहीं है क्योंकि यह मनुष्य के रक्त का जन्मजात स्वभाव है. ब्रह्मचर्य प्रकृति के खिलाफ बगावत के सिवा और कुछ नहीं.

चरित्र के अंतर्गत आता है धोखा, फरेब, झूठ, मक्कारी और कथनी तथा करनी में अंतर वगैरह. आदमी अगर चाहे तो इन पर पूरी तरह से नियंत्रण कर सकता है. क्षमता होते हुए भी नियंत्रण न करना, उलटे जानबूझकर इनको अपने हित में और दूसरों के अहित में इस्तेमाल करने की कोशिश करना चरित्रहीनता का परिचायक है.

चरित्रहीनता के जरिये, यानी कि बिना श्रम के कमाया हुआ पैसा अपने खर्च के लिए गलत यानी कि अनैतिक रास्तों की तलाश करता है. अवैधता के साथ अपराध का सीधा संबंध है और अनैतिकता के साथ अधर्म का. अपराध की सजा धरती का कानून देता है जबकि अधर्म की सजा अंतरात्मा, यानी कि ईश्वर. चरित्रहीनता आदमी को दोनों सजाओं का मुजरिम बना देती है. चरित्रहीन आदमी उस करोड़पति की तरह अपने लिए सजा का खुद निर्धारण करता है, भौतिक कानून को उसे सजा देने की कोई जहमत नहीं उठानी पड़ती.

वैसे तो सभी जीवधारियों की, लेकिन विशेषकर आदमजात की जिंदगी भौतिकता और अलौकिकता के प्राकृतिक संतुलन की पैदाइश है. चरित्रहीनता इस संतुलन को बिगाड़ने वाली सबसे बड़ी शैतानी और गैबी ताकत है.

भौतिकता का मतलब है, उत्पादन. जिसके लिए श्रम, यानी कि दैहिकता की सख्त जरूरत पड़ती है और आलौकिकता का मतलब है उपभोग, यानी कि आंतरिकता जिसके लिए मानसिक उन्नयन की खास एहमियत है. उपभोग ही उत्पादन को ऊर्जा में परिवर्तित करने का साधन है. प्रकृति ने आदमी को उपभोग का पूरा अधिकार देकर उसके बदले आत्मोन्नयन का प्रचार-प्रसार करने की जिम्मेदारी उस पर डाली है. चरित्र की शक्ति इस उत्तरदायित्व के लिए परम आवश्यक है.

बीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा दुखांत यही है कि आदमी इस विकसित कहे जाने वाले युग में भी आदिम वृत्तियों का दास या शिकार हुआ जान पड़ता है.

यह सही है कि खाने, पहनने और रहने के साधन आदमी के शरीर की अहम जरूरतें हैं लेकिन उसके मन और उसकी आत्मा की भूख भी कम एहमियत की चीज नहीं है. इनसानियत के जितने भी तकाजे हैं और जो गुण आदमी को हैवानियत के मायाजाल से बाहर खींचकर सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्य का रुतबा प्रदान करते हैं, वे सब आदमी की इसी आंतरिक भूख पर ही टिके हैं. इस भूख को महत्व न देकर आदमी की देह की चर्बी बढ़ाने का प्रयास चंदन के पेड़ की जड़ों को महत्व न देकर उसकी खुशबू के सहारे बबूल के पेड़ों की लकड़ी को चंदन बनाने के प्रयास के सिवा और कुछ नहीं है. □

ARMS/D/1113/84/A



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पाप समर्पित

अशोक गुप्ता

मैं जब पार्क में आया तो आज भी वह वहां बैठा हुआ था. रोज की तरह उसका चेहरा बुझा हुआ था, लेकिन आज फिर मुझे देखते ही उसकी आंखों में एक चमक आ गयी. मुझे लगा कि पिछले कई दिनों से वह मेरी ओर खिंचता चला आ रहा है, लेकिन कोई बात है, जो बार-बार उसके, मेरे पास आने के बीच बाधा बन जाती है. आज मेरा कुतूहल कुछ अधिक जागा और मैंने सहज होकर अपने आभिजात्य का तनाव कुछ ढीला कर दिया ताकि मेरे चेहरे पर खिंची अनुशासन की बौद्धिकता कुछ देर के लिए उतर जाये. मेरे इस प्रयास का प्रभाव वांछित ही हुआ और वह धीरे-धीरे रेंगता हुआ-सा तथा अपनी अन्यमनस्कता दिखाता हुआ-सा बेंच के पास आया और मेरे पास बैठ गया. मुझे उसका इस तरह खुद से तथा मुझसे लुकाछिपी खेलना बहुत भला-सा लगा. वह जब पास आकर बैठा तो मुझे लगा कि उसके बुझे-बुझे-से चेहरे के नीचे एक और चेहरा भी है, जिस पर बहुत गहराई से संयत होकर सहा जा रहा अंतर्द्वंद्व फैला हुआ है. और क्षणांश में अपने भीतर उससे अंतरंगता महसूस करने लगा. हमारे चेहरे परिचित होते-से जुड़ गये. मौन उसी ने तोड़ा, "आप कहानियां पढ़ते हैं न?"

मैं थोड़ा चौंकता हूं, फिर मुस्कराता हूं और तनाव की डोरियां थोड़ी कस लेता हूं. बोलता कुछ नहीं, सिर्फ सिर हिला देता हूं.

"कैसी?"

"सुख-दुख और दर्द की...और कैसी! उनके परे भी कोई कहानी होती है क्या?"

मेरी बात उसके चेहरे की तन्मयता में कोई अंतर नहीं लाती. वह उसी तरह ज्वार में डूबता-उतराता रहता है.

"पाप की कहानी नहीं पढ़ते आप?"

मैं एक बार और चौंकता हूं.

"यानी कि कोई कहानी है तुम्हारे पास?"

कहानी नहीं, सिर्फ पाप के रास्ते से गुजरता हुआ दुख-दर्द है."

"आखिर फिर भी ये अनुभूतियां कहीं न कहीं तो किसी कहानी से जुड़ी ही होंगी?" मैं कुरेदता हूं.

"नहीं, कहानी से नहीं, बल्कि सिर्फ व्यक्ति से जुड़ी हैं. एक व्यक्ति ही अपने में संपूर्ण कहानी हो सकता है क्या?" और वह मेरे हाथ पर अपनी हथेलियां रखकर मेरे चेहरे पर अपनी पुतलियां फैला देता है.

अंधेरा बिखरकर फैलने लगा है. पार्क में लोग कम होने लगे हैं. हम दोनों भी उठते हैं, अपने में बोझिल, और बिना किसी अनुबंध के अलग-अलग दिशाओं में जाने को उद्यत हो जाते हैं.

....और अगले दिन वह पुनः मुझे मिल गया, अनायास, उसी पार्क में. जब मैं वहां पहुंचा तो मेरे हाथ में एक डायरी थी, जो मैं पढ़ने के लिए साथ ले गया था, लेकिन उसे वहां देखते ही मेरे भीतर मेरी सारी योजना उलट-पुलट हो गयीं. फिर भी, जब मैं उसके सामने पहुंचा तो अपनी अस्तव्यस्तता सहेजकर मैं काफी कुछ सिमट चुका था.

मुझे देखकर वह हल्का-सा मुस्कराया. मैं भी मुस्कराया था शायद, और हमारी यह मुस्कान एक सेतु बन गयी थी, हम दोनों के बीच. उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव को देखकर मुझे आभास हो गया कि उसने भी एक विशेष संदर्भ को, मुझे साक्षी मानकर बार-बार अपने चारों ओर रचा है और छितरा दिया है. इस छोटे से अंतराल ने उसके चेहरे पर उस विशेष अनुभूति के प्रभाव को इतना एकाग्र कर दिया था कि

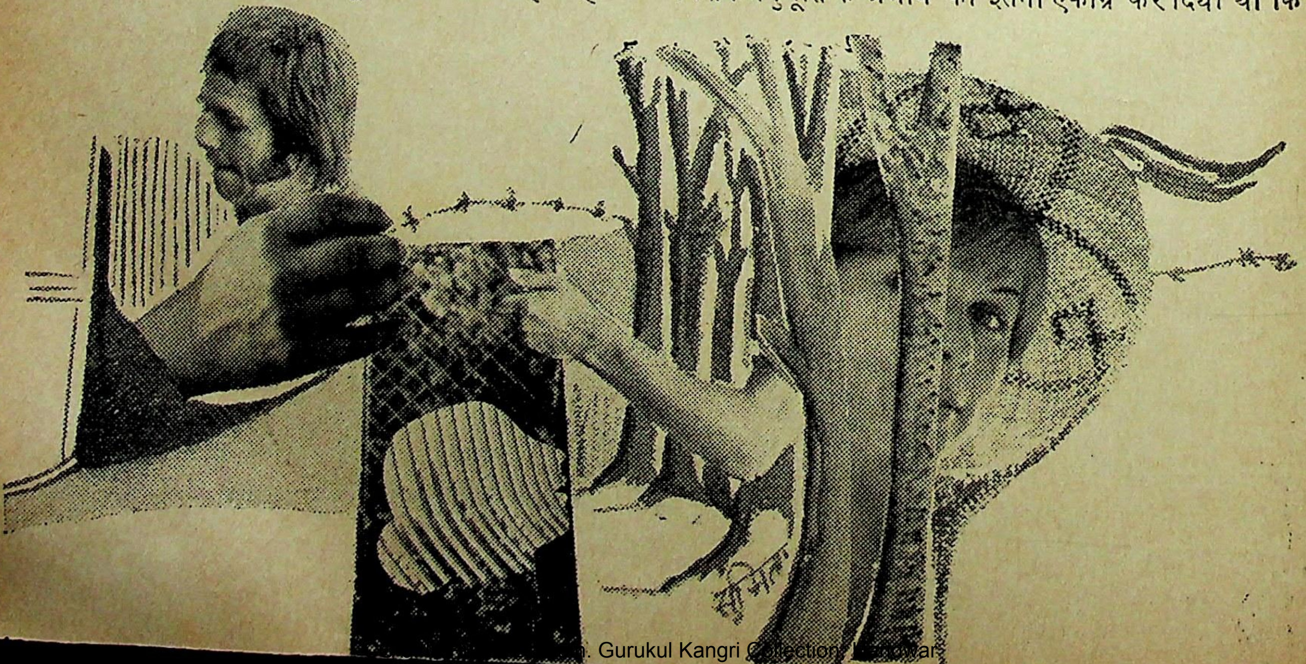

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्रयास करने पर भी मैं अपने व्यक्तित्व पर बौद्धिक अनुशासन का तनाव नहीं ला पाया. सहसा उसने बोलना शुरू कर दिया :

"जिस दिन पहली बार मेरा ध्यान उसकी ओर गया, उसकी पलकें निहायत पनीली होकर सूजी हुई थीं और चेहरे पर भी रोने के कई दौरों के एक साथ गुजर जाने की थकान. वैसे तो शायद वह ऑफिस न भी आती, लेकिन मैंने ही एक प्रयोग की अंतिम रिपोर्ट के सिलसिले में उसे बुलाया था. उसका उदास-उदास-सा चेहरा और वेदना से झुकी पलकें देखकर भी मुझे कुछ ध्यान देने योग्य न लगता, जितना उसका आते ही कोट पहनकर माइक्रोस्कोप पर झुक जाना मुझे हिला गया. मैं देखता गया कि दो बार उसने रूमाल निकालकर अपने आंसुओं से तर हो आये स्कोप के शीशे को पोंछा और अंततः अपने केबिन में जाकर सिसक-सिसककर रोने लगी, कुछ इस तरह कि मैं खुद को रोक नहीं

**आपने कभी पाप की कहानी पढ़ी है...? कैसी होती है पाप की कहानी...कैसे करता है कोई पाप...क्यों करता है...कैसे हो जाता है ऐसा कि जो किसी की निगाह में पाप बनकर पैठ जाता है वही औरों के लिए कहानी बन जाती है...? इन तमाम द्वंद्वों के जवाब खंगालती एक रचना–**

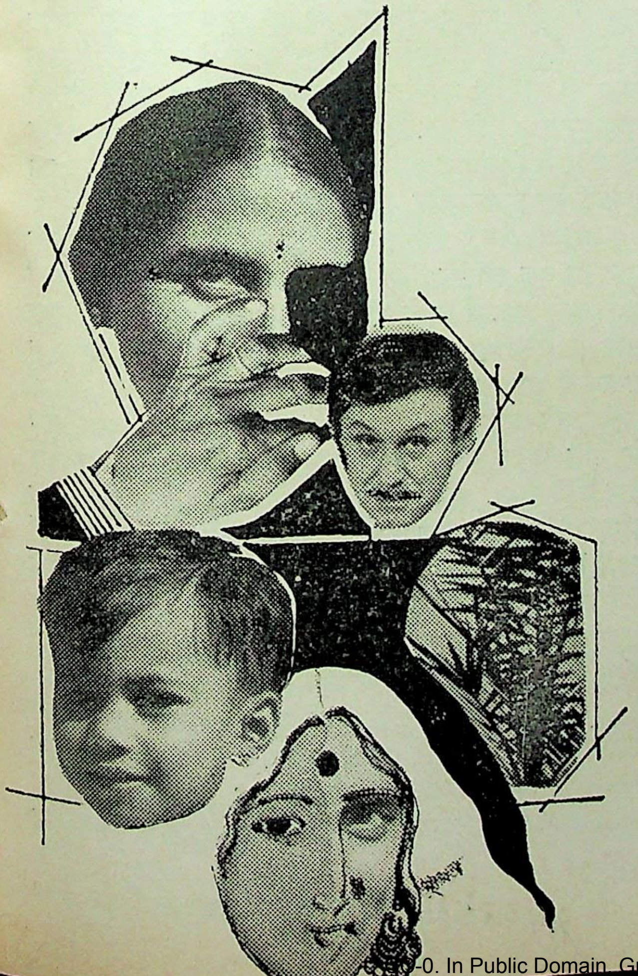

पाया. संडे होने के कारण पूरा इंस्टीट्यूट लगभग खाली पड़ा था और ऐसे सन्नाटेभरे माहौल में डेढ़ साल के दौरान मैं मिस रंजना त्रिवेदी के केबिन में पहली बार गया. दरवाजे की चौखट से अपने दोनों हाथ टिकाये मैं उसकी ओर देखता रहा. वह मेज पर एक हाथ की कुहनी मोड़कर उसमें मुंह छिपाये रह-रहकर सिसकती रही और पंद्रह मिनट बीत गये. जब उसने सिर उठाया तो मुझे वहां खड़ा देखकर उसके चेहरे पर कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई. मैंने वाशबेसिन से भरकर पानी का गिलास उसे दिया और एकटक उसे देखता रहा. एक अजीब-सा आश्चर्य भरता रहा था मेरे भीतर कि इतने लंबे अर्से के दौरान मैंने अपने ही ऑफिस में इतना तरंगित कर देने वाला चेहरा, कभी क्षण भर रुककर देखा क्यों नहीं? जब वह कुछ सहज होकर बाहर आयी तो मैंने उसे उसके घर पहुंचा देने का प्रस्ताव रखा, जो वह मान गयी. मैंने स्कूटर निकाला और उसके निर्देश पर चलता रहा. और अंततः मुझे पता चला कि वह वर्किंग वीमेंस होस्टल में रहती है.

"वह मुलाकात हमारी अंतिम नहीं रही. हर शाम एक नियम की तरह उसके चेहरे पर उदासी गहरा आती. और मैं उसे तोड़ने के लिए कोई प्रोग्राम बना लेता. उसे एकांत और निर्जन स्थानों में चुपचाप बैठना अधिक पसंद था और मुझे उसकी पसंद को मान लेना. कम से कम तब तक जब तक मैं उसके दर्द की उस तह तक नहीं पहुंच जाता, जिसके कारण हम दोनों दोस्त बन गये थे. हमारी अंतरंगता बढ़ती गयी. एक अपनेपन का विश्वास हम दोनों एक दूसरे को सौंपते चले गये और जब तरल होकर बहने वाला वह अभीष्ट क्षण आया, जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी तो उसके दुख में कुछ और गंभीरता से डूबने के बजाय मैं सिवाय एक 'अरे' के और कुछ भी नहीं कह पाया, और उसका चेहरा देखकर ठहाका लगाकर हंसने लगा. अंतरंगता के बीच मैंने पहली बार उसे छुआ. उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर और एक वाक्य उछालकर उसे गुदगुदा दिया, 'इतनी पगली है तू!' और नहीं तो क्या? नीरज ने उसे बस दूर से चाहा ही तो था? वह भी, इतने हौले से कि स्पर्श की अभिव्यक्ति भी संपूर्ण नहीं हो पायी थी उसके भीतर. न कोई वादे, न अनुबंध. तो फिर क्या, ऐसे में अगर वह अपने कैरियर के लिए कहीं बाहर चला गया तो क्या वह मुंह फेर लेना हो गया? कायरता हो गयी? और मैंने बहुत सहज होकर उसे हौले से चिढ़ा दिया.

"मेरे इस सोचने के ढंग ने उसे एक नयी दिशा दी और हम लोगों के नजदीक आने की गति काफी तेज हो गयी. हम लोग मिलते रहे. एक दूसरे के सानिध्य से भीतर ही भीतर भीगते रहे और एक हो गये. कुछ ऐसे कि हम दोनों की परिभाषाओं ने भी उसे अंततः एक हो जाना मान लिया. कभी-कभी तो ऐसा होता कि हम दोनों की रात इंस्टीट्यूट से मिले हुए मेरे ही अपार्टमेंट में बीतती और सुबह जब अलसाये हुए हम उठते तो हमें एक दूसरे के चेहरे पहले से अधिक निखरे हुए लगते. हम नये सिरे से एक अनचीन्ही-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## भेड़िया, कुत्ता और आदमी

■ विभांशु दिव्याल

तमाम दंद-फंद और उठापटक के बाद राज्य की सत्ता भेड़िये के हाथ में आ ही गयी. तुरंत घोषणा हुई कि आगे से कोई कुछ भी बोलेगा, भेड़िये की आवाज से आवाज मिलाकर बोलेगा.

जिन्हें पहले से ही आवाज बदलने का अभ्यास था उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई. जिन्हें अभ्यास नहीं था, वे अभ्यास करने लगे. कुछ स्वयं को असमर्थ पाकर मौन रहने लगे.

भेड़िये के फर्माबरदार उनकी तलाश में रहने लगे जो भेड़िये के इस 'आवाज अध्यादेश' का पालन नहीं कर रहे थे. आखिरकार एक कुत्ता पकड़ में आ गया. भेड़िये के स्वर में न बोलने के आरोप में कुत्ता अदालत में प्रस्तुत किया गया.

कुत्ते ने नम्र निवेदन किया, "हुजूर, मैं कुत्ता हूं. अपनी जुबान अपने स्वर में ही खोल सकता हूं. आदमी नहीं हूं कि सत्ता को देखकर सत्ता के तरीके से भौंक सकूं."

सफाई सुनकर भेड़िये ने आंखें बंद कर लीं, कुछ सोचा, और कुत्ते को मुक्ति का आदेश दे दिया. □

---

सी लहर खाकर फिर एक दूसरे से लिपट जाते.

"और फिर एक दिन एक विस्फोट-सा हुआ हमारे साथ, या सही कहूं तो सिर्फ मेरे साथ. कभी-कभी इस प्रसंग पर गहराई से सोचता हूं तो लगता है कि वह मात्र एक नन्हा-सा भूकंप का झटका था, जो धरती को पूरी तरह हिला भी नहीं पाया और लौट गया. लेकिन उस समय मुझे लगा था कि किसी बहुत गहरे चक्रवात की चपेट में फंसकर मैं एकदम जड़ तथा संज्ञाशून्य हो गया हूं, क्षणांश के लिए. नीरज अपनी रिसर्च छोड़कर वापस लौट आया था, अपनी रंजना के पास. उसके पैरों में बैठकर फूट-फूटकर रोया था वह, और रंजना क्षणभर जड़ होकर धरती ताकती रही थी. शादी तो उन दोनों की होनी ही थी. और इस तरह उन दोनों के बीच का सारा संकट जो मुझे अवांछित-सा बीच में खींच लाया था, एक सपने के भय की तरह टूट गया था.

"एक दिन नीरज से अलग होकर अपने कैबिन में रोयी थी रंजना, और एक दिन मुझसे बिछुड़ते समय. पता नहीं, कैसे मैंने अपने को बहुत मजबूत कर लिया था उस समय, या ताजी चोट की तरह भीतर दर्द की लहर अभी उठनी शुरू नहीं हुई थी. हम दोनों ने विदाई समारोह बड़े शान से मनाने की योजना तैयार की. जोरदार शाम, कहीं बाहर डिनर के साथ, और विदा की अंतिम रात मेरे अपार्टमेंट में. और मैंने प्रस्ताव रखते-रखते अपनी बायीं आंख दबा दी थी. रंजना के चेहरे पर पता नहीं कितनी खुशी थी उस दिन. नीरज के पास अंततः वापस जाने की खुशी, जिसकी भूमिका नीरज ने स्वयं सब कुछ छोड़कर, उसके पास आकर रची थी. अपनी खुशी में, मेरे इतना सहज होकर शामिल होने की खुशी और छूटते-छूटते भी आखिरी शाम के उतने रंगीन होने की तिहरी खुशी. और बस! हम लोगों की रात तेजी से घोड़ों पर उड़ते और हांफते बीती और जब सुबह हम लोग उठे तो ऐसे जैसे शराब के एक सरोवर में तैरकर निकले हों.

"विदा के क्षण में भावुक हो उठा था, शायद कुछ मूर्खता की हद तक, और बोलने कहने को मेरे पास कुछ नहीं था. सहसा एक बात की कल्पना मुझे एकदम आतंकभरे सुख से विह्वल कर गयी, और मैं अपने आप को रोक नहीं पाया. मैंने जिज्ञासा का उद्वेग चुपके से रंजना के कान में उड़ेल दिया. शरमाकर उसके गाल और कान रक्तिम नहीं हुए, जैसा कि मैं चाहता था, 'हट! इतनी चोर थोड़ी हूं मैं कुछ भी नहीं लेके जा रही हूं तुम्हारा!' और मेरे संदर्भों में इतनी महत्वपूर्ण विदा वह मात्र इठलाकर और हाथ हिलाते हुए देती चली गयी. मैं दूर तक उसका रूमाल हिलाते जाना देखता रहा. अपने हाथों को कहीं अपने में जड़ महसूस करते हुए, क्योंकि उसके एक वाक्य से मुझे अपने ऊपर एक हैंग-ओवर का आते जाना महसूस होने लगा था. दर्द की उस लहर की तरह, जो उस जगह और वैसी नहीं थी, जहां और जैसी होनी चाहिए. फिर भी मुझे लगा कि दर्द तो आखिर दर्द ही होता है."

मुझे सुगबुगाता देख राजेश जैन एक गतिरोध को रोकने जैसे आवेश में बोल उठा, "सर, यहां मेरी कहानी समाप्त नहीं होती, बल्कि यह तो उसका मध्यांतर है, मात्र पूर्वार्द्ध! पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो कटे हुए टुकड़े इसलिए कि उसके बीच के अंतराल में मेरी वैचारिकता तेजधार-सी पैनी हो गयी थी, जो मेरे व्यक्तित्व के साथ-साथ हर उस स्थिति को काटकर रख देती थी, जिससे भावनात्मक संदर्भ उभर सके थे. और मैं विखंडित व्यक्तित्व लेकर अपने चारों ओर गहरा एकाकीपन रचता और उसमें जीता चला जा रहा था."

राजेश जैन ने अपनी बात खत्म की तो उसके तथाकथित पाप का एक कल्पित चित्र मेरे सामने उभरा और मुझे बिना छुए गुजर गया. मैं अपने भीतर और बाहर एक साथ झांककर धीरे से मुस्काया और सहसा अपने बौद्धिक अनुशासन के तनाव में झपटकर वापस आ गया.

उठते-उठते मेरे चेहरे पर अपनी गरिमा से जुड़ा, शेष के प्रति विद्रूप था, जिसे अभिभूत होने के कारण राजेश देख नहीं पाया. एक वाक्य कुछ व्यंग्य बन मेरे होंठों तक आया, और बाहर फैल गया, ". . . और तुम्हारा उत्तरार्द्ध?" राजेश ने कोई उत्तर नहीं दिया मुझे. वह दूर आकाश के किसी कटे हुए टुकड़े को देख रहा था, जिसकी ओर ध्यान देना मेरे लिए जरूरी नहीं था. एक स्वभावगत बड़प्पन से मैंने उसका कंधा अपनी मुट्ठी में हल्का-सा दबाया और छोड़ दिया.

कोई बहुत गहरी और उपेक्षित न की जा सकने वाली छटपटाहट उसके चेहरे पर थी और थी ऊपर से नीचे तक कुछ और गहरायी अस्तव्यस्तता. मुझे लगा कि इतनी साफ और सघन पहचान देने वाली पीड़ाओं को सहने वाला व्यक्ति



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं में एक साथ कई-कई कहानियां देने वाला शक्ति पुंज हो सकता है, भले ही उसकी यातना का स्रोत बहुत साधारण और छिछला हो.

"सर, मेरी कहानी का देश रह-रहकर मेरे भीतर फैलता जा रहा है और सारा कुछ मेरी बरदाश्त के बाहर है, मैं क्या करूं सर? मैं. . ."

मुझे साफ-साफ महसूस हुआ कि वह भावुक तो हो रहा है, लेकिन उसकी भावुकता के पीछे मात्र किसी को पाने और खो देने का दर्द नहीं है, बल्कि कुछ और भी है, जो गहरे विषाद के रूप में उसके भीतर तरंगित हो रहा है, कहीं उसके स्वर में हल्की पश्चाताप की गंध भी महसूस हुई तो मेरा कुतूहल कुछ अधिक ही व्याप्त हो आया.

"तुम सब कुछ मुझसे कहो राजेश. मैं भले ही तुम्हारा दर्द तुम्हारे स्थान पर सह नहीं सकता, तो भी कम से कम तुम्हें उसके सापेक्ष कुछ और सहनशील तो बना ही सकता हूं." और वह फूट पड़ा था:

"सर! रंजना जिस ढंग से मुझसे अलग होकर गयी, उसने मुझे बहुत-बहुत तोड़ दिया. बहुत भावुक या कल्पनाशील व्यक्ति नहीं हूं मैं. वह जिस तरह सहज रूप से मेरे जीवन में आयी थी, वैसे ही नीरज के आने पर वापस चली जाती तो मैं इसे बड़े साधारण ढंग से लेकर झेल जाता, क्योंकि उसमें कितना भी डूबने के बाद, मैंने उसके साथ रचे-बसे स्वाद को किसी सपने में नहीं पिरोया था. प्रेमिका की तरह देखने के लिए जो मानसिकता जरूरी होती, उस तक तो मैं पहुंचा भी नहीं था, न कभी वहां या उससे आगे रखकर मैंने रंजना को सोचा. उन्मुक्त होकर मिल रहे गहरे और निजी सुख को किसी बंधन की शर्तों के लिए क्यों स्वीकारा जाये? और ऐसी ही थी, मेरे और रंजना के बीच के संबंधों की मानसिकता. लेकिन उस दिन जाते समय रंजना का व्यवहार जो टीस और अपनापन झटककर छुड़ाये जाने पर ऐसा एहसास दे गयी, उसे मैं भूल नहीं पा रहा हूं!

"सचमुच, मेरा क्या लेकर गयी रंजना मेरे घर से? लेकिन मुझे लगा कि सुख और आनंद पाने का समझौता मैंने गलत धरातल पर किया. मुझे हर बार यही सवाल मथता रहा कि रंजना से बिछुड़ने का दर्द मेरे मन में सही, और सही जगह क्यों नहीं है? और ऐसे में एक धारदार और पैनी, चीर कर दो कर देने जैसी वैचारिकता लेकर मैं पुनः अपना निजी जीवन जीने लगा. बहुत ही सहज और सामान्य, जैसे कुछ घटा ही न हो. हां, भावुकता भरी स्थितियों में से कुछ और सतर्क होकर गुजरने लगा और पांच महीने बीत गये. पुनः मौसम की तरह समय पाने के लिए, इतना समय बहुत होता है.

"एक दिन जब मैं ऑफिस से घर वापस लौटा तो बरामदे की सीढ़ियों पर मुझे रंजना बैठी मिली. मुझे अब भी आश्चर्य है कि मुझे उसका यूं सहसा दिख जाना सुखद क्यों लगा. वह मुझसे मिलकर भावुक तो नहीं हुई, लेकिन क्षणांश को उसने मेरा हाथ अपनी दोनों हथेलियों में भरकर मुझे ऐसे ताका कि मैं भीतर तक तरल हो गया. नीरज के साथ रंजना कुछ जम नहीं पायी. पांच महीनों में ही रंजना को लगने लगा कि नीरज को कम के कम रिसर्च तो पूरी करनी ही चाहिए थी, ताकि कुछ और ऊंचाई पर पहुंचकर शुरू हो सकता वह. और नीरज! उसे कुछ कहने लायक नहीं लगा था, उसने तो डायरी में लिखा भर था, 'रंजना के बाहर संगीत जितना मोहक और विभोर कर देने जैसा फला हुआ है; भीतर से वह उतनी ही खोखली गूंज भर है. क्या मैं मीलों वापस सिर्फ उसके अछूते रूप और शरीर के लिए चला आया था?. . .' रंजना इस वाक्य का अर्थ न भी समझ पायी थी तो भी नीरज पर आरोप के रूप में यह डायरी काफी थी उसके पास. वह डायरी, जिसमें रंजना से दूर नीरज ने हर पल उसके लिए कविताएं लिखी थीं, रंजना के हाथ में सिर्फ नीरज के खिलाफ एक आरोप का दस्तावेज था."

राजेश बोलता जा रहा था:

"रंजना नीरज के बीच की दरार के इतिहास में मैंने कोई विशेष रुचि नहीं ली. रंजना में रोष था. और जहां तक मैं अंदाजा लगा सकता हूं, नीरज से मिले दारुण दुःख में रंजना ने कोई निर्णय लेने के लिए, जिंदगी में जूझने की खातिर कुछ ताक संजोने के लिए, या यूं ही, बिना शर्त कुछ दिन मेरे पास ठहरना चाहा, जो मैंने मान लिया. बिना नीरज की प्रतिक्रिया सोचे.

"शुरू के तीन दिन हम दोनों, एक ही घर में, औपचारिकता के धरातल पर दो अलग-अलग प्राणियों की तरह अजनबी से रहते रहे. चौथे दिन रात को सहसा, दो बजे,

# एहसास

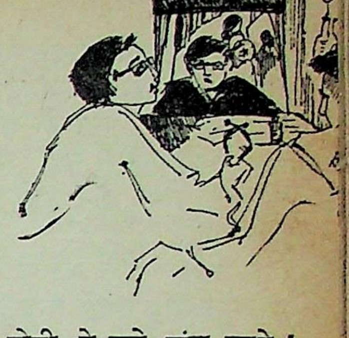

■ **विष्णुप्रसाद राजगढ़िया**

मैं एक सरकारी अस्पताल में. कंपाउंडर हूं, रोगियों को इंजेक्शन लगाता हूं, मरहम-पट्टी करता हूं. सब निःशुल्क. एक दिन की बात है. मेरे पास आये रोगी ने मुझे पांच रुपये का एक नोट दिया, इंजेक्शन देने और मरहम-पट्टी करने के एवज में. मैं काफी इंकार करता हूं, तर्क देता हूं—'यह सरकारी अस्पताल है, मैं ये रुपये नहीं रख सकता, ऐसा करना रिश्वत लेना है'. वगैरह-वगैरह. मगर वह रोगी एक नहीं सुनता और जबरन पांच रुपये का नोट छोड़ जाता है. रोगी बाहर निकलता है तो अपने एक मित्र को बताता है, "इस तरह के सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर, कंपाउंडर सबको कुछ रुपये अवश्य दे देने चाहिए नहीं तो ये अच्छा इलाज नहीं करेंगे." मैं उस रोगी की बात सुन लेता हूं.

अब भी रोजाना बहुत से मरीज मेरे पास आते हैं. मैं उन्हें इंजेक्शन लगाता हूं, मरहम पट्टी करता हूं, सब निःशुल्क, लेकिन अब प्रायः मुझे ऐसा लगता है कि मैंने इस रोगी का अच्छा इलाज नहीं किया है. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंजना मेरे पास आकर बैठ गयी और रोने लगी. मैं उसे चुप कराता रहा और अंततः वह मेरे पास ही सो गयी. पांचवें दिन वह मेरे पास ही सोयी और अभिभूत होकर उसने वही किया, जो मैं नहीं चाहता था. फिर भी मैं इंकार नहीं कर पाया. और अगले दिन वह वापस चली गयी, बिना कुछ कहे.

"उसके आने और जाने का मेरे ऊपर कोई अंतर नहीं आया. क्योंकि उसके साथ बिताये हुए इन दिनों में मैंने अपने आपको भावनात्मक तरलता से बहुत मुक्त रखा. फिर उसका एक खत आया. बहुत आत्मीयता से ओतप्रोत, जिसमें उसे, मेरे पास से लौट आने की कसक गहरायी से छील रही थी. मैंने पत्र पढ़ा और हल्के से मुस्कराकर कहीं रख दिया.

"ऐसे एक बार और आयी वह मेरे पास और चार दिन रही. इन चार दिनों में मुझे लगा कि हम दोनों के बीच पुराने दिन लौटने लगे हैं. दूरी का कवच न टूटे, इसलिए मैंने रंजना से नीरज के बारे में कभी बात नहीं की, लेकिन फिर भी वह भूलने लगी कि वह नीरज की है. मैं उस उलझन से उबर पाता, इससे पहले वह वापस चली गयी.

"इस बीच पता चला कि नीरज रंजना से कटकर अलग हो गया है, कि एक घर, एक मकान में रहते हुए भी दोनों अलग-अलग हैं. नीरज न कभी रंजना से उसके आने जाने के बारे में पूछता है, न ही रंजना बताती है कभी. और तो और, नीरज ने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि रंजना का समय आखिर बीतता कहां है? रंजना कहां जाती है वगैरह वगैरह. . . बस एक सूत्र था, उन दोनों को जोड़ता हुआ, वह था उनका ज्वाइंट एकाउंट. अब तो शायद उसमें दोनों ही पैसे जमा करते और निकालते थे, क्योंकि रंजना ने भी कोई छोटी-मोटी नौकरी कर ली थी उसी शहर में, जो मेरे शहर से सिर्फ दो घंटे की दूरी पर है.

"जाने और आने के क्रम में, अंतिम बार जब रंजना आयी तो बेहद चुलबुली और उन्मुक्त लग रही थी वह. कुछ ऐसी कि मैं भी उससे अछूता नहीं रह पाया. रात हम लोगों की वैसी ही बीती, जैसी बीतनी थी, और सुबह बहुत अलसाये हुए स्वर में उसने मुझे बताया कि वह मुझे एक खास खबर देने आयी है इस बार. मैं अपना कुतूहल रोक नहीं पाया, और उसने बहुत लजाकर, नीची निगाह किये बताया कि वह मेरे बच्चे की मां बनने वाली है.

"मैं सर्द हो गया, ऊपर से नीचे तक! हालांकि सर्द होने की ऐसी कोई बात नहीं थी. मुझे मालूम था कि नीरज और रंजना एक दूसरे से मीलों दूर हैं, और यह भी कि मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति रंजना के इतना पास नहीं है जो. . . फिर भी मैं थोड़ी देर बुत बना बैठा रहा और वह मेरे सीने से टिकी मेरी धड़कनें सुनती रही. मैंने उसे हौले से कांग्रेचुलेट किया और उठ खड़ा हुआ.

"यह तो होना ही था, लेकिन वह दिन भी मैं भुला नहीं पाया था, जब रंजना मेरे पास से अंतिम बार मिलकर, नीरज के पास जाते समय हाथ झाड़कर अपने 'चोर' न होने की सफाई देते-देते, मुझे सहसा भिखमंगा-सा कर गयी थी. जैसे कि यात्रा के लिए एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म जा रही हो, निर्लिप्त होकर गाड़ी पकड़ने के लिए. तब शरमाकर अपने पर, क्यों नहीं लहरायी थी रंजना? और इठलाकर चलती चली गयी थी.

"मैं अनमना-सा लेबोरेटरी आया और इस सूचना के संदर्भ में अपना मन टटोलता रहा. बहुत कुछ लिखता-मिटाता रहा. अपने भीतर और अंत में, एक मोड़ पर ठहरकर वहीं फ्रीज हो गया. उस ठहराव में कितनी अस्थिरता थी, यह तो इसी से पता चलता है कि मैंने उसके बाद कोई देर नहीं की. वैसे भी ड्रग्स विभाग में होने के कारण आवश्यक सुविधा भी थी मेरे पास और पर्याप्त ज्ञान भी. बस, एक कसक सह पाने भर सामर्थ्य अर्जित करनी थी मुझे.

"उस दिन की शाम हमने उसी होटल में बितायी, जहां हमने विदाई समारोह का डिनर लिया था. इस बार भी अपने सीने पर पत्थर रखकर मैं मुस्करा रहा था और उन्मुक्त था. रात बहुत दुलराकर वह मुझसे सिमटकर सोयी थी और मैं पसीने में भीगता रहा, क्योंकि मैं 'वह' कर चुका था, जिसे अब वापस नहीं लिया जा सकता था, और जो मैंने काफी समझ-बूझकर किया था.

"अगला दिन खतरनाक दिन था और मैं भीतर से बहुत त्रस्त होकर उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था. तीसरे पहर अचानक वह प्रतीक्षित आक्रमण हुआ और मुझे भरपूर पता लग गया कि मेरी मानसिक तैयारी बहुत-बहुत अधूरी थी. अबार्शन के समय रंजना कितना बिलखी थी सर! मैं वह भूल नहीं सकता. कभी मैं उसके बालों में हाथ फेरकर, उसे अपने सीने से लगाकर सहेजने की कोशिश करता तो वह बिफरकर मुझसे दूर छिटकने-सी लगती. बहुत कमजोर हो गयी थी वह. शरीर से, और मन से तो उससे भी अधिक. .

लघुकथा

# लघुमानव

**▣ प्रचंड**

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से सहस्रों मील दूर विस्तृत ब्रह्मांड में प्रकाशवेगगामी यान विचरण कर रहा था. यान में बैठे एकमात्र मानव को अपनी महानता का बोध हुआ. वह वाकई ब्रह्म है, तभी तो निष्कंटक विचर रहा है एक महाशून्य में. अपनी इस विराट कल्पना पर वह पुलकित हो उठा. अगले क्षण मस्तिष्क में विचार कौंधा कि संयोगवश अंतरिक्ष में अन्य ग्रह या यायावर मिल जाये तो वह अपना क्या परिचय देगा. यही न, कि वह पृथ्वी का वासी है. एक भरे पूरे ग्रह, संपूर्ण मानव जाति का प्रतिनिधि. इस सोच ने मानव को समुंचित कर दिया. वह सिकुड़कर पृथ्वी जितना रह गया.

वापसी यात्रा पर सागर की अनंत जलराशि में डुबकी लगाकर यान सतह पर स्थित हुआ. मानव ने आते-जाते



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके व्यवहार में एकबारगी इतना गहरा बदलाव आ गया था कि मैं उसका शत्रु भी न रहकर, एक नितांत अजनबी और पराया मात्र होकर रह गया था उसके सापेक्ष.

"तीसरे दिन उसने तार देकर नीरज को वहीं बुलवाया. नीरज के आने तक वह बहुत निश्चेष्ट होकर चुपचाप आंख बंद करके खाट पर पड़ी रही, मेरे पास होने न होने का अंतर उसके चेहरे पर प्रकट नहीं हुआ कभी. मेरे पानी, दवा पूछने का उत्तर नहीं दिया कभी. बस, रह-रहकर कसमसाती, और आंखें और अधिक कसकर भींच लेती या कभी-कभार क्षणांश को घर का दरवाजा बहुत कातर दृष्टि से ताकती और फिर आंखें मूंद लेती.

"अगले दिन शाम को नीरज आ गया. उसे देखकर मेरी सौम्यता, शिष्टता तथा गांभीर्य की सारी परिभाषाएं निरस्त हो गयीं. उसके आते ही रंजना उससे लिपटकर फूटकर रो पड़ी. मुझे अनदेखा करके, उसने नीरज की गोदी में सिर रख दिया और देर तक सिसकती रही.

"मैं रंजना के व्यवहार से निरंतर आहत होता रहा. अपने पाप के बोध से निरंतर आहत होता रहा. नीरज के व्यक्तित्व की गरिमा के सापेक्ष खुद भी आहत होता रहा. और रही-सही कसर नीरज ने स्वयं पूरी कर दी. अपने अठारह घंटे के साथ के बीच उसने मुझसे रंजना के बारे में कोई बात नहीं की. मेरे उसके परिचय और संबंध के बारे में भी नहीं, न ही सहसा उसके यहां बीमार हो जाने के बारे में. मेरे संदर्भ में उस व्यक्ति के चेहरे पर न कहीं संदेह उभरा, न ही अविश्वास. बस औपचारिकता और नितांत औपचारिकता.

"रंजना के जाते-जाते तब मेरे भीतर का पाप-बोध एक दैत्य बनकर फैल चुका था. एक हमेशा गूंजता रहनेवाला स्वर बनकर, एक भारी अजगर बनकर. और एक ध्वस्त पुल बनकर जो मेरे भीतर को बाहर से जोड़ पाता.

"रंजना चली गयी और उसके बाद कभी मेरे पास नहीं आयी. सुना था कि वह एक बहार बनकर लौट गयी नीरज के सपनों में. नीरज के प्रस्तावों और इच्छाओं के संदर्भ में उसने सदैव स्वीकृति की ही भूमिका निभायी उसके बाद, मात्र, एक बेलौस स्वीकृति.

"मैं अपने भीतर के बहुआयामी पश्चाताप में सुलगता रहा और किसी अप्रत्याशित ही सही, ऐसे सूत्र की प्रतीक्षा करता रहा जो मुझे और रंजना को किसी भी संदर्भ में पुनः जोड़ दे.

"मेरी प्रतीक्षा अर्थहीन होती गयी.

"एक दिन मैंने उकताकर अपने पास से, रंजना के कुछ फोटो, जो मेरे पास थे, उसे पोस्ट कर दिये, बिना कोई पत्र संलग्न किये. उसका कोई उत्तर नहीं आया. दिन-रात मैं उसे अपने दिमाग पर लादे रहता हूं, तब भी मेरे सपनों में कभी नहीं आयी वह. बस, एक गूंजती-सी आवाज मेरे पास आती है और मुझे झकझोर कर वापस चली जाती है.

"राजेश, यदि वह नीरज का अंश होता तो फिर भी यह सह लेती मैं, लेकिन क्या इसे रोपने और फिर नष्ट कर देने के तुम्हारे निर्णय के बीच मैं कहीं नहीं थी?... मैं कहीं नहीं थी?...."

"मैं जब-जब इस गूंजती-सी आवाज से झकझोरा गया हूं, मुझे लगा कि इसके एक-एक शब्द चाबुक बनकर मेरे ऊपर उतरते चले गये हैं. आज रंजना को गये यूं लगभग दो वर्ष हो गये हैं.

इस बीच मैंने उसे एक बार भी नहीं देखा. उसका एक भी पत्र मेरे पास नहीं आया. उसका कोई सीधा समाचार भी नहीं मिला मुझे, उसे भूलने की पूरी सुविधा है मेरे पास; फिर भी मेरे पाप की गिरफ्त मुझे मुक्त नहीं कर रही है. . ."

राजेश सहसा उत्तेजित हो जाता है.

"बोलिए सर, इसमें से सचमुच किसी दुख-दर्द की बात निकलती है क्या? कहिए न, आप चुप क्यों हैं सर, ये मेरे पाप की कहानी तो है न!"

राजेश बेसाख्ता बोलते-बोलते चुप हो गया. चुप होकर, एकाएक उठकर चला गया. और उठकर जाते-जाते एकाएक, निरंतर गूंजती रहने वाली चीख मेरे कानों में छोड़ गया. "क्या सचमुच, एक व्यक्ति अपने में एक संपूर्ण कहानी नहीं हो सकता? बोलिये न सर!"

मैं उसकी चीख के रेशे-रेशे के समांतर, रेशा-रेशा बंटा हुआ बैठा हूं. मेरे भीतर से शब्द बाहर नहीं आ पर रहे हैं. मेरी कथा दृष्टि गूंगी हो गयी है और अनुभव विन्यास अपाहिज. क्या सचमुच उतना विराट और शाश्वत होता है पाप समर्पण? □

● 16/2633 फरीदाबाद-121002 (हरियाणा)

जलपोतों पर अंकित राष्ट्रीय चिह्नों को देखा. उसे याद आया कि वह भी एक स्वतंत्र राष्ट्र का निवासी है. हां, उसके साथ एक पूरे राष्ट्र का गौरव जुड़ा हुआ है. क्षण भर को राष्ट्रीय अहं से उसका चेहरा दमक उठा. वह घटकर एक राष्ट्र रह गया.

हर्षोन्मत्त मानव ने यान को हवा में उठाया और राष्ट्र की सीमाओं ने उसको घेर लिया. यान से बाहर उमड़ते जनसमूह में वह अपनी पहचान खोजने लगा. एक सरसराती ध्वनि ने बताया कि वह तो जनपद है. मानव की छाती गर्व से फैलकर गज भर की हो गयी. अब वह जनपद था.

मानव और आगे बढ़ा तो जनपद ने उसको नगर की संज्ञा दी. उसकी चेतना को झटका लगा, किंतु तब तक वह मोहल्ले से होता हुआ चारदीवारी बन चुका था. अपनी क्षुद्र आकृति में वह ब्रह्मांड की व्यापकता के लिए व्याकुल हो उठा. अपना खोया विराट रूप पाने की अकुलाहट में मानव ने दोनों बाजू पंखों की तरह फैलाकर छलांग लगा दी—सीधे पाताल के गहरे अंधकूप में. लौटकर अपनी जमीन पाने के लिए आज तक फड़फड़ा रहा है लघुमानव. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ...और भुलाये न बनें

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं, संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

## आखिर इसे क्या कहेंगे?

▣ शलभ भदौरिया

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल और उसके निकटस्थ जिला राजगढ़ के गांव मलावर में एक अजीबोगरीब घटना घटी.

दरअसल हुआ यूं कि गांव बूडाखेड़ा के दो युवा किसान भाई खेतों में बागड़ के लिए जंरेटे (कांटे) काटने जंगल गये. यहां बड़े भाई मांगीलाल दांगी ने एक बटेर (जंगल का छोटा-सा मासूम पक्षी) पकड़ ली. जंरेटों को बैलगाड़ी में लादे दोनों भाई चले आ रहे थे कि मांगीलाल ने बटेर की छोटे भाई के बार-बार मना करने पर भी कांटे घुसेड़कर आंखें फोड़ दीं. इतना ही नहीं उस अंधी बटेर की एक चिंदी से टांग बांधकर एक झाड़ी से बांध दी.

जंरेटे ले दोनों भाई हादसा भूल घर पहुंचे और जंरेटे निकालने लगे. मांगीलाल अभी दो-तीन जंरेटे ही गाड़ी से खींच पाया था कि एक कहीं उलझा जंरेटा खींचते समय उसके चेहरे पर जा चिपका.

जंरेटे लगते ही मांगीलाल बेहोश हो गया. भाई कमल ने जंरेटा चेहरे पर से खींचा तो देखा कि भाई की दोनों आंखों में दो अलग-अलग कांटों ने घुसकर आंखें फोड़ दी हैं.

कमल सिंह उसे तत्काल मलावर अस्पताल लेकर पहुंचा. डाक्टरों ने आंखों के मामले में जवाब दे दिया, छोटा भाई बड़बड़ा रहा था, "भैया से मना किया था बटेर की आंखें मत फोड़. कलयुग है, इसमें तो इस हाथ ले उस हाथ दे तुरंत होता है." □

## गुंडे से सामना

▣ चंद्रकांत शास्त्री 'राजहंस'

बात सन् 58 की है. मैं भी देश प्रसिद्ध कथावाचक के रूप में (माधव बाग) बंबई में राम दरबार के श्री पं. जगमोहनजी के साथ तुलसीकृत रामचरित मानस पर बोल रहा था. राम दरबारवाले बाबुलनाथ में ठहरे थे और मैं ब्रह्मचारी अखाड़ा में ठहरा था. एक रात करीबन 2 बजे उसी अखाड़े के महंत (ब्रह्मचारीजी) बड़े जोरों-जोरों से दमघुटी आवाज में चिल्लाये, "बचावो बचावो हमका मारे डारत है अरे बपवा रे मार डारी. दौड़ो दौड़ो है भइया!" आदि बड़ी ही दर्दीली आवाज में वे वृद्ध तपस्वी चिल्लाये जा रहे थे.

मैं जहां पर सो रहा था उसी से करीबन 200 गज के फासले पर वो बुजुर्गवार चिल्ला रहे थे. भई मैं तो परदेश में जरा सावधानी से ही सोता हूं, मेरे सिरहाने टार्च रखी थी, मैंने बस एकदम उसी दिशा में टार्च फेंकी तो बड़ा ही करुण वीभत्स दृश्य देखा कि न जाने कौन गुंडा टाइप का एक घुंघराले बालों वाला 30 वर्षीय नवयुवक उनकी ही छाती पर चढ़ा बैठा था. ये स्टंट सीन देखकर पहले तो मैं भी कांप गया पर चूंकि मुझे कुश्ती-लाठी-कराते सभी बचपन में ही ट्यूटरों द्वारा सिखाये गये थे अतः मैं मुहूर्त तथा भविष्यकाल को न देखकर एकदम वहीं जा पहुंचा. तब टार्च और मुझे देखकर वो गुंडा उठकर शेर की भांति रामपुरी चाकू निकालकर मुझ पर भी झपटा कि मैंने लेप्टमिस करके तत्काल ही निकाल दांव लगा दिया. फलतः वो छह फुटा गुंडा भी चारों खाने चित्त जमीन पर पड़ा था. फिर मैंने उसकी उल्टी कुहनी को मोड़कर छुरे वाला हाथ घुमाया तो दर्द से वो चिल्ला पड़ा, "अरे बाप रे!" इसी बीच ब्रह्मचारी जी भी एक डंडा लेकर आ धमके थे. वो गुंडा अचानक उठकर गाली बकते हुए अंधेरे में गायब हो गया. परंतु उसकी लूट-खसूट और आतंक से बेचारे ब्रह्मचारी जी सदा के लिए मुक्त हो गये थे. दरअसल वो गुंडा बड़ा ही भयानक था इसी से वहां के 200 गुसाईं भी उससे भयाक्रांत रहते थे. अब बाद में उन सभी ने तथा ब्रह्मचारी जी ने मुझे बारम्बार शुभाशीष दिये मगर आज भी मुझे उस गुंडे की खूंखार शक्ल भुलाये नहीं भूलती. आपका क्या खयाल है? □

## मां की कीमत

▣ कृष्णा बाछल

लगभग बारह वर्ष पहले कुरुक्षेत्र के कालेज आफ एजुकेशन के कामनरूम में बैठे हुए मेरा व मेरी एक सखी का कुछ इस प्रकार वार्तालाप हुआ था—

"कृष्णा, कल तुम किसके साथ बाजार में घूम रही थीं?"

"मां के साथ. क्यों?"

"तुम मां के साथ बाजार वगैरह चली जाती हो?"

"मां के साथ नहीं जाऊंगी तो और किसके साथ जाऊंगी?"

"भई, मैं तो नहीं जाती. मुझे तो शर्म आती है."

दूसरी घटना लगभग तीन वर्ष पूर्व की है. मेरा लड़का तब दूसरी कक्षा में था. एक दिन मेरे पीछे पड़ गया कि मेक-अप करके स्कूल जाओ. जब बहुत जिद करने लगा तो मैंने समझाया कि विधवा औरतें मेकअप नहीं करतीं. इस पर वह कहने लगा कि जब दूसरे बच्चों की खूब सुंदर-सुंदर मम्मी स्कूल आती हैं तो उसे अपने आप पर शर्म आती है. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, पोस्टकार्ड पर अपने नाम पते सहित, 30 अप्रैल, 1984 तक इस पते पर भेज दें—**संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 354) 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश: 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

**छाया : रघुराय**
**द्वारा—इंडिया टुडे, दूसरी मंजिल, एफ-40, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-110001.**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# "Close your eyes an

The world of the blind. For whom there is no night or day. For whom opening the eyes is as good as closing them.

The world of those who have never seen the sun rise or set. Their mothers' face or their own. Laughter or tears. A world that knows only one colour. Black.

Think of the hopelessness and frustration of such a life.

Today, fortunately there is hope for the blind. There is a remedy that's simple, doesn't cost anything and is effective. Only it needs you.

A cornea transplant can restore sight. The useless cornea, replaced by a healthy one. And the healthy one could be yours.

Eye removal leaves no scar or disfigurement. And once you've pledged to donate, you'll live with the gratifying emotion that your eyes will live much longer than you. And that some blind person will see...through them.

everest/d83/TERF/214

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

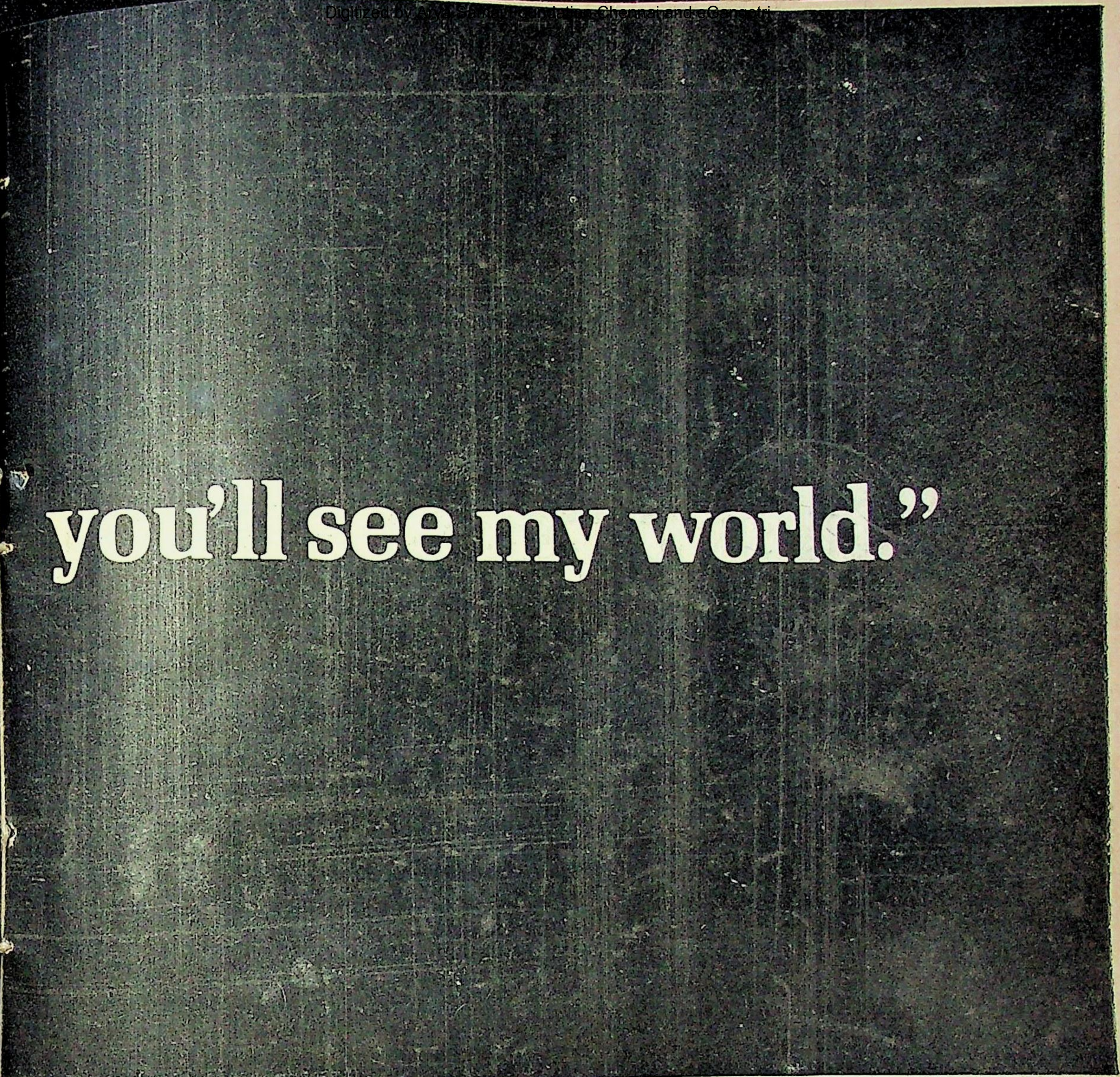


ything
s you.
ore
laced
althy
r
ve
with
our
n
son

If your heart goes out to the blind during your lifetime, let your eyes go out to them after death. It's the most precious gift you can give them.

To know more about eye donation, and what kinds of blindness can be cured, send us the coupon for a detailed brochure.

Do it today. Remember, miracles can't cure the blind. You can.

**I would like to know more about eye donation and cornea grafting. Send me a detailed brochure.**
(Kindly fill in block letters)

Name: Mr./Ms. ____________________

Address: ____________________

____________________

State: ____________

Pincode: ____________

Age: ____________

SIGHT

TIMES EYE RESEARCH FOUNDATION
7, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110 002.

# Sight. A gift only you can give.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अंधी कर्मनाशा का महसूल

○ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

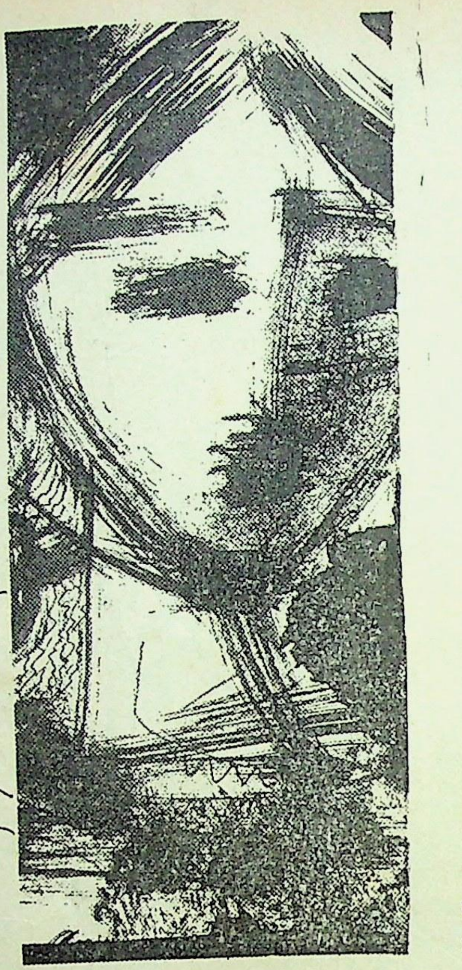

सदाशिव भैया के भाग्य पर यह कराल कुठाराघात था. लखनऊ के इलाज पर बांधी गयी सारी आशा चूर-चूर हो गयी. पर घर-द्वार, पत्नी-परिवार, धरती-आकाश सभी के अतलांत तिमिर में सदा के लिए डूब जाने पर भी जिंदगी की वासना तो उसमें डुबाये डूबती न थी——हर घड़ी उतरा आती थी. जो सूर्य प्रतिदिन जलते हुए शिशिर-कणों की अपनी अगणित रश्मियां बिखराकर अगजग के अंतर को पुलकित भव्यता पुष्पाभरण प्रदान करता था, उसी से अब उनकी कोई पहचान न रह गयी थी. नित्य नयी पुष्पाभरण ऋतुओं से उत्फुल्ल धरित्री, यमुना की जलमुखर तटवर्ती अनुपम श्यामछवि, रंगभरा नरनारी कलरव, पत्नी का कनक-बेसर-दीप्त इंदुमुख, उमड़ता यौवन और उसकी गोद में खेलते बेटे का निर्मल मधुर क्रीड़ा भाव

मेरे गांव के माता-पिताहीन सदाशिव भैया मिडिल पास कर, सरकारी जिला, हाई स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने गये. भाई, बहन, नवविवाहिता पत्नी सभी उनकी होनहारता का सपना देखने लगे. उन दिनों (1922-23) स्कूल के छात्रावासों में सम्मिलित 'मेस' प्रायः नहीं होता था. जिले भर के गांवों, तहसीलों से आये एंट्रेंस' पास करने के इच्छुक छात्र स्वयंपाकी होते थे. सदाशिव भैया की अक्सर रोहों से पीड़ित रहनेवाली आंखें चूल्हा फूंकते-फूंकते ऐसी बिगड़ीं कि पढ़ना छोड़कर उन्हें इलाज के लिए गंभीर होना पड़ा——यद्यपि हाथ से खाना बनाना न छूटा. जिले के एकमात्र सरकारी अस्पताल से निराश होकर वे लखनऊ आये. 'माधुरी' कार्यालय में हमारे आवास के नीचे खाली पड़े कमरे में डेरा डाला. मेरे पिता ने पूरी सहारता की——कई बार मेडिकल कालेज ले जाकर डा. सी. पी. मिश्रा और नेत्र-चिकित्सा-विभाग के अध्यक्ष कर्नल स्टाट को दिखाया. उस गुलाम कालखंड में भी पत्रकार (माधुरी के सह-संपादक ही सही) की बात सामान्यजन की अपेक्षा सर्वत्र अधिक सुनी जाती थी. पर सदाशिव भैया की नेत्र-व्याधि असाध्य हो चुकी थी. वहां से साफ जवाब पाकर और बराबर आंखों में छोड़ते रहनेवाली किसी दवा का नुस्खा लेकर वे गांव वापस गये. छह महीने में ही वे जन्मांध जैसे ज्योतिविहीन हो गये.

अब उन्हें स्वप्न जैसा, क्षण भर के लिए साकार हुई कल्पना जैसा ही याद रह गया था. पर अभी तो घनी तमिश्रा की बाढ़-सा दसों दिशाओं से अकुला-अकुलाकर फैलता और संत्रस्त करता पूरा जीवन पड़ा था.

लखनऊ में एक महीना, मेरे ही मकान के नीचे रहते, कोयले की अंगीठी में एक जून खाना बनाते, प्रायः रोज ही मेडिकल कालेज जाते, बाकी समय डरावने भविष्य की अनिश्चितता की विचाराकुलता में अकेले पड़े रहते सदाशिव भैया के पास मैं बैठता. सातवीं कक्षा में पढ़ता था——उन्हें बालनीति-कथा (ले. आनंदशंकर बापू भाई ध्रुव) पढ़कर सुनाता——माधुरी और चांद में छपे रोचक लेख कहानियां भी. मुझे उनके प्रति ममत्व हो गया था. उनका गौरवर्ण पीला पड़ता जा रहा था. जब तक आंखों में जो क्षीण दृष्टि बची थी, उससे वे केवल अपनी काली भाग्यलिपि ही पढ़ पाते थे.

कुंवार मेला (पंद्रह दिन की रामलीला जिसमें रावण-वध दशहरे के बजाय पूर्णिमा को होता है) में अक्सर हमारा परिवार गांव जाता था. सदाशिव भैया डाक से दैनिक 'प्रताप' मंगाते थे जिसे कोई न कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति उन्हें पढ़कर सुनाता था. अब मैं रोज उनके घर जाकर अखबार सुनाने लगा. उनके सब भाई अलग घरों में रहते थे——अपना-अपना धंधा करते थे. घर में मौजी और दो साल का बच्चा था.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषादमंडित होकर भी भौजी का मुख सोने के छोटे पूरे चांद जैसी नथ में अपनी यौवनाभा से दीप्त स्निग्ध निराभरण छवि लिये था जैसे प्रातःकालीन शेफाली-पुष्पराजि का लावण्य ऊषा की अरुणिमा में लहरा रहा हो. उनकी चाल-ढाल, हंसने-बोलने में एक विलक्षण मद था जिसकी सुषमित सुवास ढांके न ढंकती थी. सदाशिव भैया अब उन्हें न देख पाकर भी भीतर-भीतर उनकी अदृश्य रूप-राशि से कोई आशंकाग्रस्त बेचैनी अनुभव किया करते थे. 'कहां गयी थी— कहां जा रही हो—क्या कर रही हो—अभी कौन आया था—किससे बात कर रही थीं—भीतर कोई है क्या?' आदि प्रश्नों की झड़ी लगाये रहते थे. भैया की विनष्ट आंखों की सारी शक्ति, सारी भाव-प्रवणता जैसे उनके कानों को मिल गयी हो. यहां तक कि भौजी के चूड़ी के खनकने और साड़ी के सरसराने की आवाज भी वे अपनी श्रवणेंद्रिय की असाधारण तीव्रता से जान लेते थे. न जाने कौन-सी असह्य संशयालु ज्वाला वे अपने हृदय में ढोते रहते थे. अखबार सुनते हुए भी बीच-बीच में वे मुझसे—'कोई अभी भीतर गया क्या?'. . .पूछ बैठते थे.

सदाशिव के अंधे हो जाने के बाद उनके हिस्से में आयी किराने की दूकान की समस्या थी. भौजी ने पचास-पचपन वर्ष पहले के ग्रामीण परदानशीन रूढ़िग्रस्त समाज की परवाह किये बिना बहादुरी के साथ कहा, "दूकान पर मैं बैठूंगी. और कौन चलायेगा? . . .हम खायेंगे क्या?"

सिर पर जैसे बिजली गिरी हो, इस प्रकार की चौंकती चीत्कारती विचलन के साथ भैया बोले, "तुम दूकान पर बैठोगी! नाक कटानेवाली बात करती हो!"

भौजी ने कुछ आक्रोश के साथ कहा, "तुम्हारी आंखें न चली गयी होतीं तो यह नौबत क्यों आती! तुमको लाठी पकड़ाकर ले चलूंगी. तुम भी पास-बराबर बैठना. बच्चे को संभालना. खाना सुबह मैं आठ बजे के पहले बनाकर दूकान खोल लिया करुंगी. भगवान जो-जो सहायेंगे, सहेंगे."

सदाशिव भैया को यह हरगिज स्वीकार न हुआ. भौजी अपने दूर के रिश्ते के एक भाई को बुलाकर दूकान पर बिठाने लगीं. भैया ने मन मारकर हामी भर दी. जीविका का अन्य कोई सहारा न था. पर उस युवक महावीर के आकर घर में रहने, भौजी से धुल-मिलकर बात करने और घर-बाहर का सारा काम हाथ में लेने से सदाशिव का अंधा संताप-संत्रास और प्रखर हो गया. उन्हें लगता, उनके पास होते हुए भी अपने विभोर आसक्त लगाव में वे बड़ी दूर चली गयी हों. भौजी की कलकल हास्य ध्वनि—भाई के साथ उनका प्यार भरा, चंचल, बहनापे भरा संकोचहीन अपनत्व उन्हें बुरी तरह सालता रहता.

भौजी के मायके का घरू नाम 'सलोनी' था.

महावीर कहता, "सलोनी! मेरे लिए खाने को बैठी न रहा करो. बाजार के दिन तो मैं शाम को आ पाऊंगा."

भौजी कहतीं, "तुम्हारे बिना खाये मैं कैसे खा लूं! तुम्हारे जीजा समय पर खा लेते हैं. मैं तुम्हें खिलाकर ही खाऊंगी. पहले मर्द खा लें. . ."

सदाशिव को संदेह था कि महावीर दोपहर को चुप-चुप आता है—घंटे-दो घंटे भीतर रहता है. अखबार सुनते-सुनते वे मुझसे चुपके पूछते, "कोई भीतर गया क्या?"

मैं कहता, "नहीं तो. . . दरवाजा हवा से खड़का था."

गर्मियों की छुट्टी में गांव आया तो सदाशिव भैया के यहां बैठना, अखबार पढ़ना, सूबे की और देश की बातें दोपहर भर करना नियमित हो गया. इस बीच महावीर को भैया ने घर छोड़कर जाने के लिए मजबूर कर दिया था. दूकान बेच दी गयी थी. उसी पैसे से लेन-देन होता था. सूद से और अधिया पर दी गयी दो-चार बीघे की खेती से घर चलता था. पर भौजी का बाहर निकलना कैसे रोका जा सकता था. शौचादि के लिए स्त्रियों को दूर खेतों में जाना पड़ता था. गांव में बिरादरी में आये दिन कुछ न कुछ होता ही रहता. सामाजिक बुलावों में बिना गये भी न बनता था.

सदाशिव भैया कहते, "तुम घर से बाहर न जाया करो. निस्तार के लिए छोड़कर. यमुना नहाने भी न जाओ. घर में नहाओ. टट्टी नहीं है, आंगन तो है!"

**"अंधे पति की खातिर खुद भी अंधापन ओढ़ लेनेवाली गांधारी की तथाकथित महानता का तात्पर्य जीवन के स्तर पर कितना उचित है और कितना अनुचित? आंख और मन के अंधेपन में पुरातन एवं आधुनिक अंतर को रेखांकित करती मर्मस्पर्शी संस्मरण- कथा. . ."**

गर्भावस्था के कारण भौजी यों भी बाहर कम ही जाती थीं. भैया का इस प्रकार उनके चाल-चलन पर शंका करना उन्हें उत्तेजित कर देता था. महावीर के चले जाने से हंसने-बोलने का आधार भी नहीं रहा था. बड़ा हंसमुख और तरह-तरह की बातें करनेवाला वह युवक जैसे भौजी के मन को पति की सारी झुंझलाहट और दोषारोपण से अलिप्त रखता था. भैया की किसी भी लज्जाहीन अशिष्ट बात का उत्तर देने के लिए भौजी को उद्धत पाकर वह होठों पर हाथ रखकर संकेत से उन्हें चुप कर देता था—बात आगे बढ़ने ही न पाती थी. दूकान के टूट जाने से ब्याज पर घर चलता था. उसमें भी भौजी को सामने आकर गिरवी के गहने संभालना, पैसा देना, सूद का हिसाब करना—तरह-तरह के मर्दों से बात करनी ही पड़ती थी. भौजी देहाती जरूरतमंद उधारीवालों को सब समझाकर उनका समाधान करतीं. उनके रोने-धोने पर सूद में कमी कर देतीं. द्रवित होकर गिरवी के गहने बिना भी बीमारी, गमी, बेदखली आदि की करुणा-भरी बातों में आकर रुपये दे देतीं. भैया को किसी प्रकार की रियायत गवारा न थी. इस बात पर भी भौजी से उनकी न पटती थी. वे भौजी को 'उड़ाऊ-खाऊ' कह-कहकर उनकी मानवोचित सहानुभूति के लिए उनसे लड़ते-धिक्कारते थे. पर इस बात का वे उतना बुरा न मानतीं थीं—दया-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

पुण्य की बातें कर, भैया का उबाल शांत कर देती थीं.

एक प्रकार से बिना मर्द के घर की सारी असुविधाओं के बीच भौजी के फिर लड़का हुआ. पड़ोस की विधवा ब्राह्मणी को खाना बनाने, सोवर की व्यवस्था करने, दाई आदि को लाने के लिए रख लिया था. बहन के पुत्रजन्म का समाचार पाकर दोनों बड़े भाइयों ने बधाई का सामान मिठाई, कपड़े आदि लेकर महावीर को भेजा——भांजे के लिए गहने थे. महावीर पिछले दिनों यहां रहकर सदाशिव के स्वभाव और व्यवहार से खिन्न था. पर सलोनी के स्नेह को कैसे भूलता!...अपनी ओर से वह भी उसके लिए साड़ी लाया था.

भौजी नवल शिशु के उल्लास में डूबी शरद के किरणोज्ज्वल आलोक में पहुंची शस्यश्यामला की तरह मायकेवालों की प्रतीक्षा ही कर रही थीं... घंटे-घंटे उनकी आहट ले रही थीं. महावीर को देखते ही पुष्पित वन मल्लिका-सी उत्फुल्ल हो उन्होंने उसे सोवर में ही बुला लिया. सारा सामान सहेजा——मां, भाइयों भौजाइयों, भतीजे, भतीजियों को एक-एक कर पूछा——भाइयों के न आने के कारण जानकर वैसे ही आनंदच्छ्वसित स्वर में कहा, "तुम आ गये, मुझे कोई कमी नहीं लगती. वे दोनों बड़े हैं. इस घर में दाना तक नहीं खोंटते. आते, चले जाते. तुम मेरे ठीक होने तक रहो... यहां सब देखो-भालो."

महावीर ने प्रसन्नता के आवरण में लिपटी सलोनी की विवर्ण उदास मुद्रा की ओर गहरी दृष्टि डाली. बोला, "कितनी पीली पड़ गयी सलोनी तुम, कितनी बदल गयी हो! अपना नाम बदल दो . . .पहले का नाम झूठा पड़ गया है" सलोनी भाभी ने बात बदलकर आसन्नप्रसवा छोटी भौजाई की बात शुरू कर दी. पति के कान ठीक वहीं लगे होंगे, यह सोचकर उसने महावीर को अपने बारे में कुछ और अधिक कहने ही न दिया.

सदाशिव भैया की पुत्रजन्म की प्रसन्नता महावीर के आते ही न जाने कहां चली गयी. पुराने मेल-मुलाकातियों के पास महावीर घर के बाहर घंटों रहता पर भैया को लगता वह भौजी के पास ही सटा बैठा है. पत्थर के भारी टुकड़े जैसी यही गरदनतोड़ बात उनके गले में झूला करती. बरोठे में बैठे-सोते-जागते वे भौजी का ही स्वप्निल ध्यान करते. वे उन्हें इतनी सजीव मालूम पड़तीं जैसे उनकी छुवन से कतरा-कतराकर भाग रही हो...दूसरे उन्हें भर जीकर छू रहे हों!...न जाने कैसी-कैसी दुर्भावनाएं उनकी अंधी आंखों को भौजी के दुर्वृत्त के चलचित्र दिखाती रहती थीं. उनके तनिक न चाहने पर भी भौजी महावीर को बीस दिन रोके रहीं. उसके जाते समय भौजी फूट-फूटकर रोयीं. ऐसी द्रावक रुलाई तो मैंने विवाह के बाद पहली बार विदा होते लड़कियों की भी न देखी थी. महावीर देर तक खड़ा उनके आंसू पोंछ-पोंछकर उनके सिर पर अपना स्नेहाकुल हाथ फेरता रहा. मैं भैया के पास बैठा देख रहा था. जाते समय उसने भैया के पैर छुए. भैया ने कुछ न कहा. अपनी अंधकार की गुफा जैसी फफूंद-मढ़ी आंखें पास खड़ी भौजी पर गड़ाये रहे, जैसे उनके चिंता-कातर मुख पर छायी अदृश्य अनुरक्ति उन्हें उद्वेलित किये हो.

इसके बाद के तीन वर्ष मेरा गांव जाना न हुआ पर भैया-भौजी के गृह-कलह की तरह-तरह की बातें लखनऊ में दूर घर बैठे, गांव से अक्सर आने-जानेवालों के मुखों से सुनने को मिलतीं. भौजी का इत्र-बसा साज-सिंगार, गांव में घूमना-फिरना, अपने चंचल शरद-सरिता जैसे विमल शांत रूप को अधिकाधिक प्रसाधित रखना, सबकी चर्चा का विषय था. आखिर यह सब किसके लिए और क्यों? 'का पै करों सिंगार, पिया मोर आंधर' लोकोक्ति से कोसों दूर वे खान-पान-गीत-गान-पर्व-त्यौहार के आयोजनों में निराली लगतीं——रूप-सरस देवगंध पहाड़ी ताल जेसी.

इस बार मेले में जब गया तो भैया को ऐसा पाया जैसे बरसों से वे कभी हंसे न हों. उनके चेहरे पर किसी ने स्याही पोत दी हो. पराजय और अंतग्लानि की थकी-थकी निष्क्रियता उन पर सिर से पैर तक छायी थी. चारपाई पर वे निढाल पड़े थे. भीतर से आकर भौजी बोलीं, "आ गये रतन! चाचा-चाची (मेरे माता-पिता) भी आये हैं?"

दोनों बच्चे आंगन में खेल रहे थे. मैंने कहा, "किट्टू, कितना बड़ा हो गया है!"

भौजी की सम्मोहिनी मुस्कान और मधुर हो गयीं. बोली, "तुम भी तो बड़े हो गये हो. लंबे सुंदर... सुघर..."

"मैंने कहा, "भैया क्या बीमार हैं...?"

"भौजी ने कहा, "रात-रात भर जागते रहते हैं. नींद नहीं आती. सारे घर में घूमते हैं. लेट जाते हैं, फिर उठते हैं. एक घंटे भी बिस्तर पर थिर नहीं रहते. कई बार ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं. मैं हाथ उठाती हूं तो झटक देते हैं.

मैंने पूछा, "सोते में चलते हैं या जागते-जागते?"

भौजी ने कहा, "जागते ही रहते हैं... सोते में कोई कहीं चलता है? सारे घर को टटोलता फिरता है?"

"सोते-सोते घर में चलने की बीमारी होती है भौजी."

"है भगवान!" भौजी की दोनों आंखों में जल की श्यामल रेखा तैरने लगी. निस्तब्ध निशीथ की निदारुण सांय-सांय उनकी निःशब्द मुखाकृति पर घहरा उठी. न जाने उनके कितने भीतर से ऐसा सुदीर्घ निःश्वास उच्छवसित



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ जैसा मैंने पहले कहीं सुना न था. गाढ़े आंसुओं की रुकी धार बह चली. बोलीं, "बिना देह की छाया की तरह इनका पागल-चलना देखकर मैं दोनों बच्चों को लिये पड़ी रहती हूं. अकेला डर काटे नहीं कटता. घबराहट से ऊबकर महावीर को बुला लिया. बच्चों का डर भी कुछ कमा है."

मैंने पूछा, "कहां हैं वे. .. दिखाई नहीं पड़ते!"

वे बोलीं, "रात में देर तक नाटक का काम करता रहा है. अभी जागा है. . . जमुना नहाने गया है."

रामलीला में प्रतिवर्ष गांव के उत्साही शिक्षित-अर्द्ध-शिक्षित लोग नाटक खेलते थे. इस बार डी. एल. राम के 'दुर्गादास' की तैयारी चल रही थी. गुलनार का पार्ट करने-वाला कोई अन्य युवक न पाकर सबकी दृष्टि पढ़े-लिखे महावीर पर गयी थी, जिसका छरहरा बदन, भावपूर्ण कोमल दृष्टि, स्वर की आर्द्र मिठास और गोरे ललाट पर काले बादलों जैसी ठहरी घनी रेशमी केशराशि उसे नारी-अभिनय की पात्रता प्रदान करती थी.

गांव के बाहर जमुना तटवर्ती अछोर मैदान में मिट्टी के विशाल रावण और मेघनाद की स्थायी खड़ी और कुंभकर्ण की लेटी दैत्याकार काया के पास रोज शाम को विविध लीलाएं चलती थीं. गांव भर की कुमारियां, वधुएं, प्रौढ़ाएं, सांझ होने से पहले ही साज-सिंगार कर वहां एकत्र होती थीं. दो-तीन घंटे घर-गृहस्थी की नीरस बातें भूलकर सभी क्रीड़ा, उत्सव, कलालाप, आनंद-रस की सर्वथा नयी दुनिया में पहुंच जाती थीं. घर-घर में किशोरियों, युवतियों, लगभग पूरे वर्ष घरों की चहारदीवारी में बंद रहनेवाली नयी-पुरानी बहुओं के सजने-बजने की चहल-पहल चार बजे से शुरू हो जाती थी—अच्छे से अच्छे वस्त्राभूषण पहनकर जैसे प्रतिदिन शादी ब्याह के मंडप में जाती हों.

सलोनी भौजी चार बजे से बच्चों को तैयार कर, अपने बनाव-सजाव में लग जाती थीं. पान-इलायची की डिबिया भरकर, औरों की तरह रोज धराऊ पहनकर स्वच्छंद सौंदर्य की ममतारूपिणी देव-प्रतिमा जैसी, पर रह-रहकर आनत नयन हो उठतीं वे एक विचित्र प्रभामंडल बनाती चलती थीं. मेले में प्रायः सभी से पहले पहुंच आगे की पंक्ति में बैठकर अपने यौवन से दीप्त पूर्वान्हि में गोधूलि-रंजित संध्या की शोभा को बांधे रहती थीं.

नाटक दस बजे के बाद ही शुरू हो पाता था. प्रतिपदा को महिलाएं सात-साढ़े सात तक रामलीला मैदान से घर लौट पड़ती थीं. फिर खा-पीकर फुरसत से नौ-साढ़े नौ बजे नाटक के पंडाल में आगे बैठने के लिए पहुंचना शुरू कर देती थीं. उस दिन सलोनी भौजी के औत्सुक्यमय उल्लास की सीमा न थी. घर लौटने में अंधेरा कुछ अधिक हो गया था. मुझे पान की दूकान पर देखकर बोलीं, "रतन भैया, अपनी भौजी को भी पान खिलाओ!"

ग्रामपथ की दूसरी ओर एक की उंगली पकड़े, दूसरे को गोद में लिये वे ठिठकी खड़ी थीं. मैंने पान के बीड़े उन्हें देकर उनके छोटे बच्चे को ले लिया और बोला, "चलो, मैं तुम्हें घर तक छोड़ दूं." चलते-चलते वे मुदित मन से बोलीं, "नाटक शुरू होने के पहले आ जाना. . . आज और कल आखिर तक तुम रहोगे ही. . . मुझे घर पहुंचा भी देना."

मैंने कहा, "जरूर देखूंगा. सलोनी भौजी का सलोना भाई 'गुलनार' बना है. . . क्या कहना है इस नाटक का!"

घर पहुंचकर भैया के पास बैठ गया. भौजी भीतर कपड़े बदलकर घर के काम करने लगीं. भैया ने पूछा, "इस समय कैसे आये रतन?"

"भौजी अकेले आ रही थी. मैं साथ चला आया. सदाशिव भैया मेरी बात पर पैशाचिक हंसी हंसते हुए बोले, "इन्हें कब से किसी के साथ आने की जरूरत पड़ गयी! . . .ये तो आजाद हैं, आधी रात तक बाहर मरदों के बीच रहती हैं."

बच्चों को खाना खिलाती भौजी मेरी ओर निर्मीत करुण दृष्टि डालकर चुप रहीं.

उनके मौन को जैसे आरोप की स्वीकृति मानकर, इस बार अब तक मुझसे लगभग मौन रहे आये भैया और भी विष-बुझी क्रूरता से बोले, "इनके ब्याहकर घर आते ही मैं अंधा हो गया. इन्होंने अपने पापों से मुझे प्रेतयोनि में पहुंचा दिया. घर-बाहर इनका वारविलास चलता है. नाटक के बहाने फिर रात भर को निकल जायेंगे."

तब तक महावीर आ गया. भौजी वैसी ही शांत रूपिणी वेदना-मूर्ति बनी, उसे भी खाना परोसने लगी.

---

## ॐ अपवित्रः पवित्रोवा
## उर्फ. . .चौका शुद्ध

मेरे स्वर्गीय पिता गांव से हिंदी मिडिल पास कर, गवर्नमेंट हाई स्कूल फतेहपुर (उ. प्र.) में उन दिनों की मेट्रीकुलेशन परीक्षा के छात्र थे. गांवों के सभी छात्रों की तरह छात्रावास में रहते थे और अपना खाना स्वयं बनाते थे. एक लंबा हाल था, जिसमें प्रत्येक छात्रावासी का अलग-अलग पर एक-दूसरे से सटा हुआ छोटा-छोटा चौका हुआ करता था. सब चौकों की हदें पतली-पतली मेड़ें देकर बनायी गयी थीं.

पिताजी के चौके के बगल में या दो-तीन चौके हटकर जनार्दन त्रिपाठी (तिवारी) का चौका था. उस दिन जनार्दन ने कढ़ी बनायी, दाल-रोटी सब तैयार कर कुछ लाने चला गया. लौटकर देखा तो एक छोटा कुत्ता न जाने कहां से उस चौके की मेड़ के भीतर घुसा खड़ा था. उसे तत्काल जनार्दन ने बाहर निकाला. आसपास के चौकोंवाले छात्र (सभी ब्राह्मण) कौतुक-पूर्वक देख रहे थे. जनार्दन ने कहा, "भैयाहरो (भाइयो) 'ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थां गतोऽ पिवा' वाला मंत्र न होता तो आज मेरा चौका अशुद्ध हो जाता."

लिखने की आवश्यकता नहीं कि जनार्दन ने इसके बाद सस्वर पूरा मंत्र पढ़ा और बाकायदा रुचिपूर्वक भोजन किया. —रामेश्वर शुक्ल 'अंचल.'

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं भीतर-भीतर भैया की नग्न बातों से तिक्त हो उठा था. बिना बोले न रहा गया, "आप कैसी वाहियात बातें करने लगे हैं. गांव भर में जो सब करती हैं, वही तो वे भी करती हैं. . . वहीं तो जाती हैं. जो किसी के मन में न आये वही बोलते हैं आप!"

शायद काफी दिनों से भैया के मन की अवरुद्ध गर्हित भाषा आज बांध तोड़ चली. बोले, "मैं अंधा, लाचार घर में पड़ा रहता हूं. . . ये ऐश करती है. . . मैं सब समझता हूं. . . अंधा होकर भी इसकी विलासलीला देखता हूं. रात को अब क्यों यह बाहर जाये. . . अंधा पति घर में असहाय पड़ा रहे. रोज मेला, रात-रात भर की गम्मत, बुलौआ, रंग-रास. महावीर को पाकर और मतवाली हो गयी हैं. देखता हूं, आज रात को कैसे घर से निकलती हैं!"

भौजी की सात्विक मलिनाभा लाल हो उठी, जैसे सारे शरीर का खून चेहरे पर चढ़ आया हो, 'मैं जाऊंगी. . . जाऊंगी! . . .वैसे तुम कहते तो न जाती. पर आज जरूर जाऊंगी. सारा गांव मेरे भाई का 'पार्ट' देखेगा. . . मैं यहां पड़ी अपनी अंधी कर्मनाशा का महसूल चुकाऊंगी. तुम न आना रतन. मैं अकेली जाऊंगी. . . मेरे दोनों बच्चे साथ हैं. जो एक दिन ऊंचे पूरे मरद बनेंगे. . .मुझे कोई डर नहीं."

भैया ने पास रक्खी अपनी लाठी जमीन पर पीटते हुए कहा, "मेरा अधिकार है. करमजला अंधा होकर भी मैं पति हूं. .. मेरे सामने तुम बाहर गुलछर्रे उड़ाओगी!"

महावीर थाली छोड़कर एक और खड़ा भौजी की रक्तारुण मुद्रा देख रहा था तो मुझ जैसे बाहरी के सामने भैया के निर्लज्ज क्रोध-प्रदर्शन पर और भी क्षुब्ध हो उठी थी. महावीर अपने होठों पर हथेली रखकर उन्हें चुप रहने पर जोर दे रहा था पर भौजी शील पर आघात होती मर्म-व्यथित सती जैसी फुफकारती बोली, "तुम करमजले हो तो मैं भी करमजली हो जाऊं? गांधारी बन जाऊं. . . या आंखों को फोड़ डालूं! अंधा बेशीली जरूर होता है पर तुम्हारे जैसा घर की लक्ष्मी को दिन-रात कलंक लगानेवाला नहीं. मेरा भाई घर-द्वार छोड़कर बेसहारा अभागिन को सहारा देने के लिए यहां है. . . तुम्हारी अपमान भरी नंगी बातें सहता है. उसके सामने उसकी बहन का पनिहाव करते हो. . . वह मुझे चुप किये रहता है. . . तुम्हारी ज्यादतियों को. . . कलंक-वचनों को हंसी-खुशी झेलने की ताकत मुझे देता है. सारा गांव उसके शील-स्वभाव को सराहता है. . . तुम पापी मन से रात-रात भर टटोलते घूमते हो कि वह मेरे पास तो नहीं लेटा है. . .मैं हूं कि सोचती हूं. अंधे पति को छोड़कर सदा के लिए मायके कैसे चली जाऊं? इस दया-माया में तुम्हारा सब कुछ सहन करती हूं. न जाने भगवान कहां है जो सदा देखकर भी नहीं देखता. . . तुम्हें सुमति नहीं देता."

सदाशिव भैया उसी प्रकार लाठी जमीन पर पीटते हुए बोले, "चुप रह! पराये घरों में मुंह मारनेवाली!"

"नहीं, मैं अब चुप नहीं रहूंगी. मेला बाद बिरादरी को बुलाकर सही सारी बात खोलूंगी. गांवभर को चुनौती दूंगी. . . मेरा एक खोट बताये. मैं तो घर-घर की जानती हूं. पर सबका रास्ता अलग है. तुम जाओ रतन! महावीर तुम जाओ. .. नाटक में जाओ. मैं अकेले जाऊंगी. सारे गांव की औरतें आती है. मुझे क्या डर है! . . .ये मेरा परोसा नहीं खाते, अपने-आप निकाल खायेंगे. इन्हें जितनी नौटंकी करनी हो कर लें. मुझे मार ही डालें तो इस जीवित नरक से त्राण मिल जाये!" कहते-कहते वे आर्तनाद कर उठीं. धाड़ मारकर रोते-रोते फिर बोलीं, "इस भरी उमर में मैं खाऊं, पहनूं-ओढ़ूं नहीं! इन्हीं के सोच में गल जाऊं, यही ये चाहते हैं. बैरागिन विधवा बनी रहूं. . . पर इनके रहते मैं अपना सुख-सुहाग कैसे छोड़ूं. इन्होंने आंखें खो दी तो मैं नारी-जीव खो दूं. . . ?"

'दुर्गादास' रात तीन बजे तक चला. महावीर का 'गुलनार' का अभिनय उस अधकचरे ग्रामीण रंगमंच में सबसे बढ़िया माना गया. न जाने कैसी वेदना उसके स्वरों में एक विह्वल खनक भरती रही. मैं मंच के निकट एक कोने में खड़ा नाटक को देखती सलोनी भौजी की चावभरी, एकाग्र मुद्रा देख रहा था जो बीच-बीच में आंखों की जल-बूंदों को बिना पूरा बनने दिये पोंछ लेती थीं. जो पूरी बन जाती थी वह जैसे उनकी ही दृष्टि से छिपकर उनके गोल कपोल पर ढुलकती 'गैसों' के प्रखर प्रकाश में साफ देख लेता था. □

---

**लघुकथा**

## गरीब

▣ ऋषि प्रियदर्शी

कर्फ्यू खुले आज दूसरा दिन है.

प्रशासन का दावा है, स्थिति अब पूर्ण नियंत्रण में है, लेकिन लोगों में अभी तक भय व्याप्त है.

अफवाहों का बाजार गर्म है. कोई कहता है कि आज मुसलमानों में तीन सौ लाठियां बांटी गयीं. कोई कहता, आज डेढ़ सौ लड़वैये बाहर से बुलाये गये हैं. यह सब सुनकर उसे कर्त्तव्य-बोध हुआ और वह साइकिल पर सवार हिंदुओं को यथास्थिति समझाकर संघर्ष के लिए तैयार रहने की चेतावनी देता फिरने लगा.

एक जगह साइकिल रोककर उसने सिगरेट सुलगायी. दूर से, एक फकीर को अपनी ओर आता देखकर, उसने जेब से एक पैसा निकालकर हाथ में ले लिया.

"मालिक, खुदा के नाम पर. . . !" पास आकर फकीर ने हाथ फैलाया.

सिक्का उसकी मुट्ठी में कस गया. घृणा से फकीर को ताकते हुए, उसने पूछा, "तू मुसलमान है?"

". . .गरीब हूं." फकीर ने मायूस-सा जवाब दिया, 'गरीब!"

● द्वारा प्रेमपुरा, हापुड़-245101 □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**गरीबी और अमीरी में इतना फर्क क्यों है कि गरीब और अमीर आपस में मिलकर भी एक-दूसरे के लिए अजनबी हो जाते हैं?—मन, माहौल और धन के बीच झिलमिलाते सुख और दुख की कहानी——**

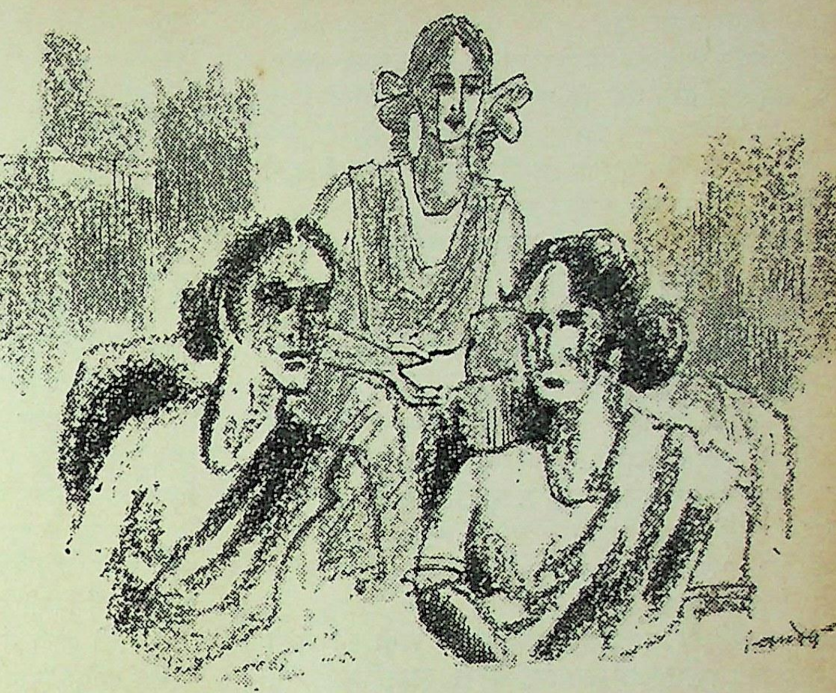

# कितना सच, कितना झूठ

• धर्मपाल

रानी ने स्टेज पर आकर गाना शुरू कर दिया. स्वर मधुर है. हावभाव साधारण. नाटे कद की गोरी-चिट्टी लड़की सफेद कमीज में है. मिसेज खन्ना स्टेज पर बीच की कुर्सी पर विराजमान है, नगर के सिलाई स्कूल के वार्षिक आयोजन की मुख्य अतिथि. वह आंखों पर चढ़े बड़े शीशेवाले चश्मे को ठीक करती है. नजरें रानी पर ठहर जाती हैं. स्वर की मिठास ने वातावदण को लपेट लिया है.

"कौन है...?" मिसेज खन्ना फुसफुसाती है.

"स्कूल की एक छात्रा... पिता मामूली क्लर्क है. डबल स्टोरी में रहती है." हैड मिस्ट्रेस का उत्तर शिष्ट है.

"क्या बताया...डबल स्टोरी में?" मिसेज खन्ना का चेहरा बिदककर कठोर हो जाता है. आंखों के सामने अपना विशाल बंगला घूम जाता है. कितने शौक से उसने एक-एक कमरे को सजा रखा है. उनका माहौल अपना-अपना है, बाहर के वातावरण से एकदम अलग-थलग कभी-कभी अपने फर्नीचर से वह चुंधिया जाती है. सब कुछ पराया लगता है उस पर थोपा हुआ...

वह अपनी आधी नंगी पीठ कुर्सी पर टेक देती है.

"लड़की गाती अच्छा है." वह रानी की आकृति से भी परे कुछ देख रही है, समय की परतों में धूमिल उसकी अपनी छवि. सालों पहले एक शाम उसने भी अपने में गाना गाया था. मामूली दुकानदार की साधारण बेटी. वैभव के एक ही सशक्त प्रवाह ने उसके परिवार को एक दूसरे ही छोर पर ला खड़ा कर दिया था. नगर के कई लोगों ने दांतों तले उंगली दबा ली थी. वह स्वयं भी ढलने लगी थी बदलते समय की परछाइयों में.

तालियों की गड़गड़ाहट उसे उखाड़कर सचेत कर देती है.

"फंक्शन के बाद रानी से मिलना चाहूंगी."

"जी...जी..."

आयोजन का अगला आइटम स्टेज पर चल रहा है. मिसेज खन्ना पानी में बहते बर्फ के एक तोंदे की मानिंद तिरती रहती है. कितने प्रयास किये थे उसने अपने शुरू-शुरु के अस्तित्व को मिटाने के—जैसे दुकानदार की बेटी का जीवन उसने जिया ही न हो. शब्दों का चयन बदल डाला. उनका उच्चारण उसके व्यक्तित्व का अटूट अंग बन गया. उसके सामाजिक जीवन में चार चांद लग गये.

कार तक विदा देने स्कूल का सारा स्टॉफ आता है. रानी भी साथ है. मिसेज खन्ना कार में बैठते हुए बोली, "तुम्हारा गला मीठा है. कभी मैं भी शौक रखती थी. आओगी मेरे घर?"

"क्यों नहीं... खन्ना आंटी." रानी अजीब ढंग से मुंह संवारती है. कार चलते समय मिसेज खन्ना रानी की ओर ऐसे देखती है जैसे अपने पालूत कुत्ते को!

खन्ना आंटी का रानी को निमंत्रण उसकी सोच की अमूल्य निधि बनने लगा, मानों वर्षों से दबी लालसा को नयी दिशा मिली हो. उसे लगा जैसे वह डबल-स्टोरी में रहनेवाले प्राणियों से किसी होड़ में बहुत आगे निकल गयी है. पूरी बस्ती का अपना ही परिवेश है. आर्थिक विषमताओं से जूझते हुए प्राणी. दो छोटे-छोटे सीमित बरामदे और थोड़ी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परे हटकर ईंटों की चारदीवारी. उनकी आंखों में असंख्य लालसाएं तिरती रहती हैं.

खन्ना आंटी से संबंध स्थापित करके रानी अपने-आपको विशिष्ट समझने लगी. एक ही रात में उसके विचार जुड़ने लगे. . . नगर के दूसरे छोर में कोठियोंवाली कालोनी से! एक शाम रानी के घर के सामने कार आकर रुकी. हार्न बजा. वह सरपट भागती बाहर आयी.

श्वेत पोशाकवाला ड्राईवर बोला, "खन्ना मेम साहिब ने आपको बुलाया है."

रानी अपनी खुशी समेट न सकी, "मम्मी! डेडी!... बताया था न हमारे घर कार आयेगी. आओ, बाहर आकर देखो. . . क्या मैं झूठ कह रही थी?"

"मम्मी-डैडी बाहर आये. ड्राईवर का अभिवादन किया, "आइए न आप अंदर . . . चाय का एक कप. . ."

अड़ोस-पड़ोस बाहर खड़ा था. रानी, मम्मी और डैडी ने उनसे नजर मिलाना ठीक नहीं समझा. एक ही क्षण में वे उन्हें अपरिचित-से दिखने लगे थे.

मिसेज खन्ना के घर पार्टी का आयोजन था. रानी की आंखें तरह-तरह के पाऊडर में लिपटे चेहरों पर झूल रही थीं.

"खन्ना आंटी!" रानी की आंखों में चमक गहरा गयी.

"हां. . . रानी तू पहुंच गयी?" मिसेज खन्ना का स्वर संयत और भावहीन था, "चल जल्दी से एक गाना सुना दे."

स्वर की मधुरता ने गहन नीरवता बिछा दी... और फिर तालियों की गड़गड़ाहट.

रानी से कोई कुछ नहीं बोला. किसी ने कुछ नहीं पूछा. उसका परिचय भी नहीं कराया गया.

"रानी, कुछ खाया या नहीं? खा लिया? चाय पी ली? मंसा राम, रानी को रिक्शा पर बैठा दो. हां, किराया भर देना." मिसेज खन्ना ने केवल इतना ही कहा.

इसके बाद भी कई बार रानी, खन्ना आंटी के बंगले पर आयी. धीरे-धीरे एक अलगाव उभरने लगा रानी और बस्तीवालों में.

"रानी कितना बदल गयी है. है तो हंसमुख पर आजकल कटी-कटी रहती है." सरला की मां कीर्तन सभा में कह गयी.

"अब कीर्तन में नहीं आती. भजन गाती थी तो अच्छा लगता था."

श्यामा की बुआ की आंखों में तरेर थी, "उस दिन मैंने रानी को बुलाया. कहने लगी. . . 'बिजी हूं'. . ."

बुढ़िया बीच में ही टपक पड़ी, "श्यामा की बुआ, रानी के घर कार आवे है. . . जब मिलो उसी का राग अलापे."

उस रात मिसेज खन्ना ने रानी की पीठ थपथपायी थी सबके सामने. घर लौटते ही उसने बोलना शुरू कर दिया, "मम्मी, बस्तीवाले कितने अजीब हैं? बात-बात में टांग अड़ाते हैं. हर चीज पर नजर रखते हैं. . .सरला की मां रोज टोकती है. . . 'रानी, तू कहां जाती है? क्या करती है वहां?' सच, इन लोगों में कलचर नाम की चीज नहीं! . . ."

रानी की मां के चेहरे पर रानी के लिए प्रशंसा थी. रानी का स्वर रोष से भरा था, "मम्मी, खन्ना आंटी के यहां रात यही बात चली थी. . . गर्मागर्म बहस में सब कह रहे थे. . . 'अरे भाई, दूसरों की लाइफ से क्यों जुड़ते हो? . . . बस, अपना अपना जीवन जीओ. इंटरफियरेंस ठीक नहीं सब गड़बड़ा जाता है'. . . है न मम्मी?"

"रानी, तू कुछ बोली?"

"न मां, मैं वहां कुछ बोलती थोड़े हूं चुपचाप सुनती हूं."

रानी का परिवार बस्तीवालों से कटकर इकलौता हो गया. दमघोंट वीरानगी पनपने लगी. घरवाले अपनी परछाइयों से प्यार करने लगे. उधर मिसेज खन्ना रानी से कभी-कभार एकदम कट जाती जैसे वह उसका विगत हो. . .उसके विगत जीवन की बदसूरत छाया! कई बार शब्द उसके होंठों पर आकर सिकुड़ गये, "बस, बहुत सुन लिया तेरा गाना, चली जा यहां से. कभी मत आना."

पर उसे लगता, रानी से अचानक मुंह मोड़ना सरल न था. उसके व्यक्तित्व में परतें नहीं थीं. सहजता, सरलता-दुख-सुख में किसी से जुड़ने की क्षमता!

एकाकी क्षणों में मिसेज खन्ना एक दिन अनायास ही उस से कह गयी, "रानी, कितने लोग यहां आते हैं मेरी अपनी सोसाइटी में बात करते समय एक संशय मन को कुरेदता रहता है. हर वक्त एक दूरी, एक सतर्कता. . . कि मेरा इमेज न खराब हो जाये. यहां तक कि मि. खन्ना से भी मन में तड़प उठती है सरल आत्मीयता के लिए. . . उन सबका दृष्टिकोण. . . जैसे नंगापन बिल्कुल अननेचुरल हो. रानी, आदमी इतना छिपाव, दुराव कैसे सहन कर सकता है?"

रानी उमड़ पड़ी, "आंटी, बहुत कुछ समझ नहीं पा रही हूं. हां, एक बात जरूर जान पड़ती है आप . . .आप अकेली हैं, मन की किसी बात का बंटवारा चाहती हैं."

रानी अपना हाथ उसके गाल पर रख देती है. स्पर्श में द्वंद्व नहीं. अवचेतन में वह सुख नहीं जो कभी-कभी दूसरों के दुख से मिलता है. मिसेज खन्ना के दिमाग में एक विचार कौंध जाता है कि. . . डबल स्टोरी में रहनेवाली मामूली क्लर्क की बेटी! . . . मेरे गाल पर हाथ रख दिया? ओह नो, बिलो माई डिगनेटी! . . . पर मेरी अपनी सोसाइटी में. . .? वह द्वंद्व से लिपटी कई क्षण बैठी रही.

मिस्टर खन्ना कुछ दिनों के लिए बाहर जा रहे थे. बेटा और बेटी अवकाश बिताकर होस्टल में वापस जा चुके थे. मिसेज खन्ना इतनी बड़ी कोठी में अकेली थी. गहरी सोच के बाद उसने रानी को कुछ दिनों के लिए अपने घर बुला लिया.

रानी पूरी कोठी में घूम गयी. विस्फारित आंखें एक चीज से हट दूसरे पर टिक जाती. मन में लालसाओं का प्रांगण सजीव हो उठता.

उस रात आहट का वह क्षण रानी की नींद बिखेर गया. अस्पष्ट सिसकन साथ के कमरे में थी. रानी ने पलंग पर लेटे-लेटे पर्दा हटा दिया. सामने ड्रेसिंग टेबल के शीशे में एक महिला का बिंब था. . .अधसोयी आंखें संपूर्ण प्रश्न बनकर खिल गयीं—यह महिला कौन है? पहले कभी नहीं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोधकथा

## बोझ ▣ उर्मिकृष्ण

पथरीला, संकरा रास्ता था और खड़ी चढ़ाई. एक साधु उस मार्ग से तीर्थ-यात्रा को जा रहे थे. सामान के नाम पर उनके पास एक कंबल, चिमटा और कमंडल ही था, किंतु चढ़ाई के कारण वह उसी में पसीना-पसीना हो रहे थे.

कुछ आगे चलकर उन्हें एक 11-12 वर्ष की पहाड़ी कन्या दिखी जो पीठ पर एक बच्चे को लिये हुए थी. चार-पांच वर्ष का वह बालक खूब स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट था. वह किशोरी उसे संभाले हुए बड़ी फुर्ती से चढ़ाई चढ़ रही थी. साधु ने उससे कहा, "बेटी, इतना बोझ उठाकर तुम कैसे चढ़ लेती हो! ...मैं तो इसी में हांफ गया हूं."

किशोरी ने आंखें तरेरकर साधू की ओर देखा और बोली, "महाराज, बोझ आपने उठाया हुआ है. मेरा तो यह भाई है." □

● 47/2, शास्त्री कालोनी, अंबाला छावनी (हरियाणा)

देखा? खन्ना आंटी. . . नहीं. . . नहीं, उनके सिर पर बाल हैं. चेहरा इतना बूढ़ा नहीं, गर्दन पर झुरियां कभी नहीं देखी.

रानी का साहस साथ छोड़ गया. मन में आया कि वह चीख पड़े. . . 'खन्ना आंटी. . . खन्ना आंटी!' पर चीख सिमटकर रह गयी. ड्रेसिंग टेबल के पास खड़ी महिला ने पीछे घूमकर देखा, "रानी तू जाग गयी? क्या बात है? परेशान क्यों है?"

"आप. . . आप कौन हैं?"

"मैं . . . ? नहीं पहचानती? तुम्हारी खन्ना आंटी. . ."

"नहीं नहीं. . .आप खन्ना आंटी आप नहीं!"

"रानी, तू भी असलियत से घबराती है? मिस्टर खन्ना, मेरी सोसाइटी . . . सबको चाहिए एक इमेज. . . मानो वास्तविकता ओछी हो, घिनौनी हो! खन्ना साहब भी मेरी असलियत से दूर भागते हैं, केवल मेरे इमेज से ही प्यार करते हैं. वह चाहते हैं दर्पी सजी एक प्रतिमा, नहीं तो समाज में उनकी नाक कटती है."

"आंटी आप बोर नहीं होती?"

"क्यों नहीं, कई बार मुझे लगता है एक खोखलापन मुझे निगल रहा है, मेरे पूरे अस्तित्व को! बच्चे होस्टल में रहते हैं, खन्ना साहब बिजनेस में व्यस्त, बार-बार एक ही लालसा पनपती है कि कोई चीज मेरे पूरे अस्तित्व को भर दे. . . और मैं पूरी तरह डूब जाऊं."

पलंग पर रानी अवाक् बैठी है. उसके मन में आया, वह बस्तीवालों के पास लौट जाये. कीर्तन में सम्मलित हो. श्यामा की बुआ से खुलकर बातें करे!

खिंचे सन्नाटे में मिसेज खन्ना के चेहरे की रेखाएं मुखरित हो जाती हैं, "और अब तो मैं भी अपने इमेज से प्यार करने लगी हूं. जैसे कि मैं, मैं नहीं, वह हूं. . . मात्र एक सिलसिला. . . कटा हुआ व्यक्तित्व. . . ठहरो!"

सजी हुई ट्रे. . .एक बोतल और दो गिलास. . . मिसेज खन्ना का स्वर,

"लो रानी, पिओ."

"खन्ना आंटी!" चीख के बाद कोठी में सन्नाटा और भी घना हो जाता है. मिसेज खन्ना पीने लगती है. कई गिलास गले से नीचे उतार जाती है.

"रानी, मैं कह रही थी न . . . कोई चीज जो मेरे पूरे अस्तित्व को लबालब भर दे, इससे कुछ क्षण भर जाते हैं. . फिर रेगिस्तान लगता है. . . मिस्टर खन्ना का लगाव नहीं मिलता. . . .बस, मेरे इमेज से जुड़े रहने की सतही तृष्णा! अपने बच्चे भी अजनबी आंखों से देखते हैं. . ."

रानी पलंग से उठकर उसे अपनी बाहों में लपक लेती है. इस बार फिर वह इस मामूली लड़की के बंधन से स्वयं को मुक्त कराना चाहती है. प्रयास बेकार जाता है. उसे लगता है, रानी की बाहों के घेरे में शून्य नहीं है.

"आप रो रही हैं?"

"मेरी असलियत से खन्ना साहब को सख्त नफरत है. समझ नहीं पाऊंगी रानी, मैं इस तरह उनके सामने कभी नहीं आयी. दूसरी ही बनकर आयी हूं. . . और वह उस दूसरी को ही पहचानते हैं."

रानी आंटी को अपने पाश से रिहा कर देती है.

"कैसी दरार है? दरार को बनाये रखना ही मेरा जीवन है. डर लगता है अपने ही बच्चों से! कैसे खुदी यह दरार? समझ में नहीं आता. मेरी जिंदगी के मनहूस सड़े हुए पलों से उन्हें कोई सरोकार नहीं. वह मेरी विरासत हैं, केवल मेरी!"

"आंटी, आप इतना दुख महसूस करती है? मैं तो सोचा करती थी कि. . ."

"मुझे कह लेने दो." मिसेज खन्ना रानी का वाक्य पूरा नहीं होने देती, "इतने साल मैंने शून्य में काटे हैं दिल के स्पंदन की प्रतिध्वनि सुनने को आतुर, विकल. . ."

शराब के दो गिलास मिसेज खन्ना अंदर उंडेलती है, "कभी-कभार लगता है किसी निर्जन टापू पर मैं नितांत अकेली हूं. इतने सारे संबंधों के बीच मेरा अकेलापन, मेरी आशंकाएं सब कुछ निजी है. बच्चों को मेरे कमरे में आने की मनाही है. . . आधुनिक मम्मी का इमेज बनाये रखने का लगातार प्रयास!"

यह सब रानी के लिए एकदम नया है. . .विदेशी है. वह खन्ना आंटी को अपलक देखती रहती है. . . मानों कोई अजनबी महानगर की भीड़ में अचानक टकरा गया हो.

"रानी , मेरी बात मानोगी?"

"कहिए. . . "

"एक गीत सुना दो."

"इस वक्त?"

"हां. . ."

. . . गले की मिठास कोठी की नीरवता में घुलने लगती है. मिसेज खन्ना की पलकें धीरे-धीरे नीचे उतरने लगती हैं. □

● 13, हाउसिंग कालोनी, सोनीपत (हरियाणा)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# क्रेन से उठते हुए

□ बाला शर्मा

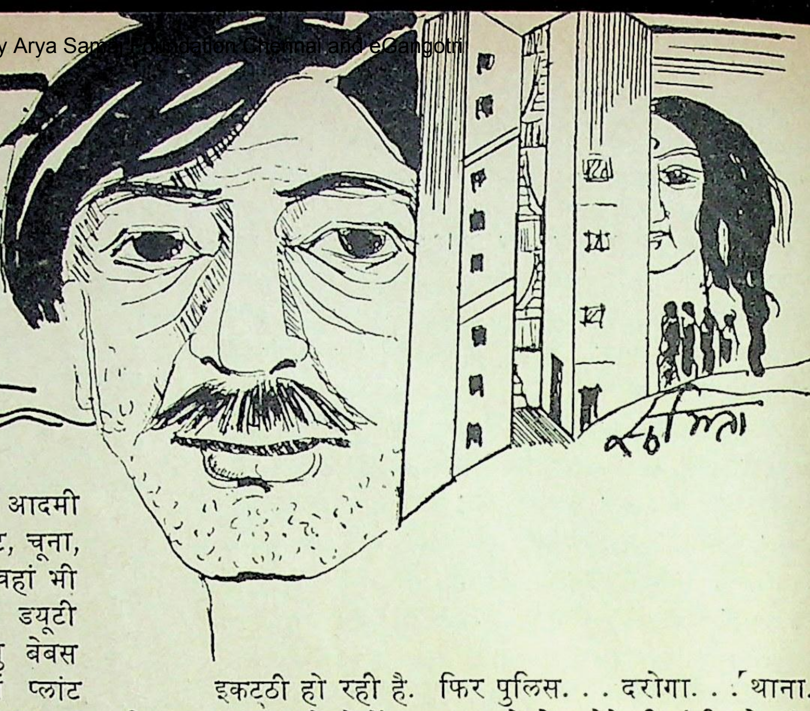

भरती खुल गयी है. प्लॉट पर और भी आदमी चाहिए. बिल्डिंग खड़ी हो रही है. ईंट, चूना, गारा, ट्रक भर-भर सीमेंट के अंबार लगे हैं. वहां भी मजदूर चाहिए. दत्त साहब स्वयं बैठते हैं ड्यूटी रूम में. ठेकेदार को अच्छा नहीं लगता परंतु बेबस हैं, "ऐसा किसी फैक्ट्री में होता है! पचासों प्लांट लगा दिये इस एरिया में. हजारों लाखों मजदूर सप्लाई किया. छंटनी कराया, फिर लगाया, दस-दस साल काम किया पर स्साला एक भी परमानेंट नहीं हो सका. नो मैडिकल नो लीव, नो प्रावीडेंट फंड, कोई लफड़ा नहीं. अंगरेज साहब की बात ही और होता है. इन कमीन लोग को कभी मुंह चढ़ाया ही नहीं. इधर टाइम ऑफिस में कभी गोरे साहब ने पांव भी नहीं धरा. इतनी गर्मी में . . . कैसे बैठता है भला. . ."

टाइम कीपर रजिस्टर क्लर्क और वॉचमैन सब ठेकेदार की मुट्ठी में. रम, ठर्रा, स्कॉच, और छोकरी, सब दांव-पेंच चलता. अंगरेज साब लोग भी बड़े दिन न्यू ईयर्स ईव पर बुरा नई मानता. . . किसी का मेमसाहब है किसी का नई. . . फिर देसी छोकरी ठीक. . . सब ठीक. . . अब साली कोई कुंआ, पोखरा ढूंढती रहे. . .

"काला हिंदुस्तानी डर्टी मैन. . . "गोरा सैम्सन गाली देता. . . जमीन पर थूक देता है. ठेकेदार बच्चू बाबू खी-खी हंसता जमीन पर थूक देता है. हंसता है. . . हंसता चला जाता है. विकराल जबड़े फैलाकर रस ले-लेकर टाइम बाबू हरी सिंह वाचमैन सबके साथ मजाक बनाना.

फिर उस दिन सुनाई दी थी एक विकराल हंसी. . . मधुकर अपनी झोंपड़ी में गला फाड़कर हंस रहा था.

"बौराय. . . गइल. . . "बूढ़ी झमियां झिंगली खटोली पर उठ बैठी. उसकी झुग्गी ठीक मधुकर के समाने है.

"ओ. . . हां. . . हो. . . माई. . . "तीव्र स्वर के ठहाके मधुकर को करुणा क्रंदन में बदल गये तो जाती हुई छमियां पलटकर उसकी झुग्गी में चली गयी. . .

"अरी. . . दैया. . . . "पलटकर दौड़ती चली आयी.

"का. . . भया. . . का. . . भया. . . अरी कुछ बोल मुंह जारी. . ." झमियां पोपले मुंह से लगातार गाली उगलती जा रही है. छम्मी की तो डर के मारे घिग्घी बंध गयी है."

राह चलते मधुकर की झुग्गी में घुस गये. बहुत भीड़ इकट्ठी हो रही है. फिर पुलिस. . . दरोगा. . . थाना. . . मधुकर को दोनों हाथ कमर से घेर लोहे की जंजीर से बांधकर ले गये. उसकी घरवाली की बाहर लटकी जीभ लाल सुर्ख आंखों पर कौड़ी-कौड़ी भर की काली पुतली जैसे डाकिनी का भेस हो गया हो. मधुकर ने गला दाबकर अपनी घरवाली की हत्या कर दी थी. . . और अपराध. . .

"मी लॉर्ड. . . ये लेबर लोग शराब पीता. .. गांजा पीता. . . छोकरी से धंधा कराता. वो इसका घरवाली था सर. . . ये सारी रात तक शराब पीता रहा ठेके पर. . . भूख से रोती औरत ने रोकना चाहा. झगड़ा करता था. मारपीट सब करता था. फिर भी वह इसे रोकती रही. . . तो गला दबाकर उसकी हत्या कर दी." सरकारी वकील ऊंची आवाज में बहस करते रहे. . . अदालत में सन्नाटा था. मधुकर का अपना, बचाव पक्ष के लिए कोई वकील नहीं था.

▣

"तुमने बुलाया था उस औरत को. . . "सुरेश अपने केबिन में दहाड़ रहे हैं. क्रोध में रक्त जैसे माथे पर चढ़ आया हो. दास गुप्ता टाइम कीपर सब सर झुकाए खड़े हैं. पूरी रिपोर्ट हरी सिंह ने उन्हें दी है. दासगुप्ता ने सैम्सन को खुश करने का यही तरीका अपनाया था.

"ओह. . . तभी. . . तभी. . . "वे दांत किटकिटाते माथा हथेली में दबाए धम्म से कुर्सी में धंस जाते हैं.

" ये सब. . . उस कांट्रेक्टर का बदमाशी है. . . " दासगुप्ता मिमियाता है.

"पर. . . . तुम्हें मालूम तो था सब. . . फिर कहा क्यों नहीं?" सुरेश बीच में ही गरज उठे. . .

कांट्रेक्टर को ब्लैक लिस्ट कर दिया, दासगुप्ता, टाइम-कीपर, सबसे एक्सप्लेनेशन की मांग. . . कहा गया उतना सीमेंट. . . कितने लेबर भर्ती हुए. . . सब कुछ का हिसाब . . . अब भला किसे फुर्सत है कि एक-एक बोरी गिनते. . . जाओ. और लेबर. . . साला इधर-उधर गायब हो जाये तो. . .



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है देख लेंगे. . ." कहता दास गुप्ता चला गया क्रोध में दांत किटकिटाता. एक धूर्त रेखा उसके चेहरे पर फैल रही थी. सुरेश ने बात अनसुनी कर दी.

सुरेश को हैडक्वार्टर पर आना होता है. हैड आफिस से कांटैक्ट करना है, एक्सपोर्ट मार्केट देखना है. तमाम सारी मेल इकट्ठी हो रही है. उसका उत्तर देना है.

"ऐनुअल लीव भी नहीं ली. . ."शालिनी लटके हुए भारी हो आये चेहरे से ताना देती है.

"चलेंगे भाई चलेंगे. . . अभी बस थोड़े दिन और. . ."

"हूं. . . बच्चों की छुट्टियां तो अब अगले साल ही होंगी." बीच में ही टहोक देती है और पीठ मोड़कर सो जाती है. सुरेश को ये बेरुखी अच्छी नहीं लगती. शालिनी के और विनय के बारे में तमाम उल्टी-सीधी अफवाहें उनके कानों तक भी पहुंची हैं. ओह, नहीं कभी नहीं. यह टेलिफोन कॉल. . . पर भांति-भांति की सूचना मिलना. . . ये सब चाल है. कुचक्र है किसी का. दस बरस की विवाहित जिंदगी में कभी एक पल को भी तो नहीं देखा उसे छिछला कदम उठाते तब फिर यह. . . सब?

"क्या देख रहे हो. . . ?" वह असमंजस में पूछती है.

"कुछ नहीं. . ."वे झेंपकर उत्तर देते हैं. कहीं न कहीं स्वयं को ही दोषी पाते हैं. लेकिन हो सकता है कि उनके स्वयं के पास अधिक समय नहीं है शालू के अथवा बच्चों के लिये इसी. . . कारण. . . परंतु. . . नहीं. . .

फैक्ट्री के गेट पर दूर-दूर तक दूकानें खुल गयी हैं. चाय की, सब्जीवाले की, राशन, मोटा चावल, कपड़ा, सब कुछ उधार मिलता है. देसी ठेके की शराब की दूकान भी है. सब कुछ मिलता है—नकद भी उधार भी. सही मिल तो जाता है. पेट का गड्ढा भरने के साधन तो जुटे हैं.

होली, दीवाली, खूब हुड़दंग मचता है. ति. . . तिरक. . . तिन धिन. .. "हुलियारों की टोली घर-घर चंदा मांगती घूम रही है.

"साहब लोगन से भी चंदा लेना चाहिए. .. "चरतू के सुझाव दिया. परंतु किसका इतना साहस जो सीधा पहुंचे बड़े साहब लोगन में. सिंगारी का बाप सई संजा से ताड़ी गटक झुग्गी में पसर गया है बेसुध. यही जा सकता है. इसकी बेटी ही तो करती है साहब लोगों के घर में काम.

"ई दई. . . जारा तो. . . बारा घंटा से पहला उठि न सकी. ." सिंगारी की महतारी माथे पर हाथ मारती उसे कोस रही है.

"अरे तौ ई कहा. . . ई तुहार बिटिया ई ना कर सकति का इतनी जुगत. . . !"

"हां, हो सिंगरिया बा. . . तुही जा न. . . "किसी ने भीड़ में हुलसकर रहा था.

"हम. . .न जाब. . . "प्रकट में अनिच्छा दिखाती रही.

"अरे ना: . . बिटवा. . . तुहार साहब लोगन का बात तुम समझ सकत हो." महतारी ने आग्रह करने पर मान गई थी.

किसी ने दो दिया, किसी ने चार. सुरेश ने इक्यावन रुपये दिये ये नकद. टाइमकीपर ने नहीं दिया. दास गुप्ता ने वायदा किया. रात को आकर ले जाने का. आंख मिचमिचा कर घूरता रहा था.

सांझ के अंधियारे की गई वह आधी रात गए लौटी थी. नुची-खुसी देह, फटा घाघरा, ओढ़नी. मुंह से आता देसी शराब का भभका हाथों में मुड़े-तुड़े नोट दस-दस बीस-बीस के. हौले से कुंडी खड़की महतारी ने तुरंत अंदर ले किवाड़ भेड़ दिए. पर इससे क्या! दीवारों के भी कान जो लगे हैं. छमियां का खांसता मठारता स्वर झुग्गी को चैंन से सोने दे तब न.

"वेस्वा. . . रांड. . . छिनाल कहीं की. . . "पिच्च से धरती पर थूक दिया.

---

**लेबर-बस्ती में तनातनी है. नंगे-भूखे लोगों ने उन्हें घेर लिया. आक्रोश की छाप सबके चेहरे पर फैल रही है. यही है. . .इसी ने किया है. . .कितनों के पेट पर लात मारी है. . .हमार आत्मा का सराप. एक उपन्यास-अंश.**

---

दिन चढ़े सारी बस्ती में खुसर पुसर होने लगी. उसका बाप अभी तक बेहोश जो पड़ा है. महुआ की आधी बोतल जो चढ़ाई है वह तो मगज में चढ़ बैठी है. "तिक, तिक, तिक, ता थेई. . . छम छमा छम. . . "होलियारे टोली बना नाचते-गाते सबके घर जा धमके गुलाल अबीर टेसू के फूल के हार पहने सबके गले मिलते गाते हंसते. . . आज सब बराबर. . . परस्पर नाचना गाना खाना और पीना भी सबका साथ किसी ने खींच कर सुरेश को भी नाच में शामिल कर लिया. युवक-युवतियां जोड़ा बना गोल घेरे में घूम रहे हैं एक दूसरे को धकियाते गिरते-पड़ते. उनके पांव की धमक ढोलक की थाप के साथ लय-ताल दे रही है. सिंगारी मटकती इठलाती बड़ा साहब के साथ-साथ नाचने लगी. खिलखिल करती हंसी और छिछोर इशारे करता दास भृकुटि नचाता उसे उत्तेजित करता रहा कि सहसा सुरेश ने लक्ष्य किया कई जोड़ी दृष्टि उन्हें ही ताक रही हैं. धमककर खड़े हो गए. निशब्द पांव बढ़ाते अपना काटेज में चले आए हैं. दास गुप्ता की छिछली हंसी अभी तक कानों में गूंज रही है.

'फुलिश. . .' सुरेश एक झटके में दिमाग से उस बात को निकाल देते हैं लेबर क्लास से सोशल होना भी तो आवश्यक है. फिर इन दास गुप्ता जैसेलोगों की धूर्तता. . .!

फल मिठाई के टोकरे और अंदर छुपी दो चार बोतलें दत्त साहब के बंगले पर भी पहुंचा गये. दास गुप्ता के कुक ने अंदर रखवा दिये. सांझ को महाराज से पूछा था "कौन दे गया था!"

"साब, वो ठेकेदार का ड्राइवर लाया था.. . ."

"और कौन था साथ में. . . !"

"दास गुप्ता साब भी थे. . . "



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हू. . . अ. . . "तुरत हरी सिंह को भेजकर वापस करवा दिया. महाराज को आगे के लिए सचेत कर दिया गया.

"सनकी स्साला. . . "दास गुप्ता अब सीधा गाली पर उतर आया था.

"देख लेंगे. . ." ठेकेदार ने धमकी दी थी. सब उनके कानों तक पहुच गई. पर इस सब की चिंता उन्हें नहीं है. 'टु वर्क विद ओनर एंड सिंसियरिटी' यही तो ध्येय रहा है सदा. फिर ये सब लोग जो हैं. उन्हें दुगना-तिगना ओवर टाइम दो, पेशगी इनाम कुछ भी करो. समय रहते कंसाइन्मेंट पूरा हो जाना है. साप्ताहिक छुट्टी नहीं करनी है. रहमत खां को नमाज पढ़ने को भी फुर्सत नहीं मिलती. कालू और शफीक मियां थोड़ी देर टूल खाते में ही ऊंघ लेते हैं. सुरेश आधी तिपहरी रात बिना सूचना दिए राऊंड पर निकल जाते हैं.

"साहब का लंच-डिनर कुछ भी नहीं हो पाता. . . महाराज सारा कुछ ब्यौरा फोन पर ही शालिनी को दे देते हैं.

उधर टूल शॉप में बहुत गहमा-गहमी है. चारों ओर लोहे की कतरन के ढेर. टनों लोहा रोज निकलता है. कांट्रेक्टर से डीलम तै कर दी गई है सस्ते दामों पर खरीद की. पर तोल भी तो आवश्यक है.

घर्र, घर्र, घर्र बिना बत्ती जले ही ट्रक स्टार्ट हुआ और अंधेरी सड़क पर गुम हो गया. सुरेश के सतर्क कान चौकन्ने हो उठे. टार्च के तेज प्रकाश में नेम प्लेट पढ़ ली थी. वे कार स्वयं ही ड्राइव कर रहे थे. अभी गेट के अंदर नहीं गए थे. ट्रक में कतरन ऊपर तक भरी थी. तो यह बात है. . .

पुलिस, फोन, दरोगा, सब कुछ स्वयं ही करते रहे. हरीसिंह ड्यूटी पर नहीं था. तभी यह सब हुआ. टाइम कीपर आंख मलता अनभिज्ञ बना रहा. कोई चश्मदीद गवाह नहीं है लेकिन वे स्वयं हो काफी नहीं क्या!

"साहब मौका-वारदात पर दो तीन लोगों की गवाही जरूरी है," दरोगा कहता है.

तो ये बात है. पुलिस की भी शह है इसमें. इस जालसाजी का भंडाफोड़ तो करना ही है.

फिर एक और धमाका हुआ. रहमत मिस्त्री का हाथ मशीन में आ गया. सीधे हाथ की चारों उंगलियां कट गई. चलते चक्के बंद हो गए. लाखों का नुकसान. मतलब जवाबदेही सैम्सन की, हैड आफिस को. उत्तरदायी केवल सुरेश दत्त बड़े साहब एग्जीक्यूटिव मैनेजर.

एकाएक माथा पकड़कर बैठ गए. यूनियन सक्रेटरी का संदेश आ गया है. पहले हर्जाने का करार करना होगा फिर मशीन चलेगी. हजार-दो हजार नहीं, पचास हजार की मांग है. सुरेश अकेले डिसीजन लेने में असमर्थ हैं.

धरना, नारे, मीटिंग, यूनियन, के साथ और गेट पर भारी भीड़ मजदूरों की. सुरेश को बाहर नहीं जाने देते.

"पुलिस प्रोटेक्शन होना मांगता दत्त साहब. मामला थोड़ा सीरियस है." दास गुप्ता सुझाव देता है.


**मुफ्त ! मुफ्त !! मुफ्त !!!**

हमारी कंपनी ने पूरे हिंदुस्तान में बहुत नाम कमाया है. पांच साल गारंटी का माल पहले पहल हमने ही बनाया है. पंद्रह साल की कोशिश और तजुर्बे के बाद हमने यह माल बनाया है. हिंदुस्तान की तमाम कंपनियों में हमारी कंपनी एकदम बडी है. हमारी कंपनी के समस्त जेवरों की सूची तथा उनके मूल्य आप घर बैठे ही मुफ्त मंगा सकते हैं. हमारे बहुमूल्य केटलाग को देखकर आप अपनी मनपसंद चीज़ सिर्फ नंबर लिखकर वी.पी.पी. द्वारा मंगा सकते हैं.

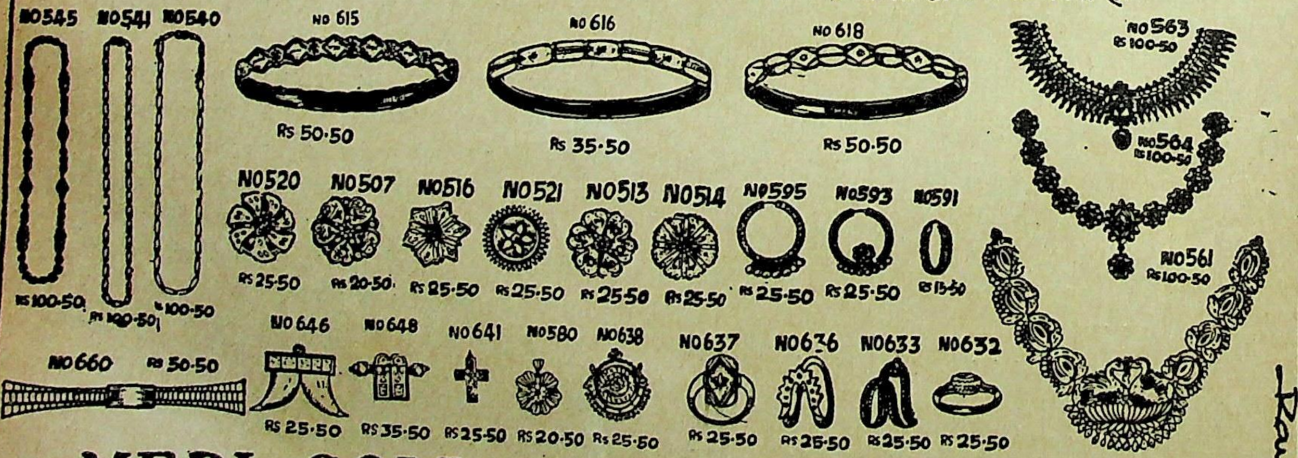


**MERI GOLD COVERING WORKS**

**14, RANGANATHAN STREET, T. NAGAR, POST BOX No. 1405, MADRAS-600 017**




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं. . ." सुरेश बिफरकर कहते हैं. पुलिस का मतलब तनातनी और बढ़ेगी. फिर मामला कंट्रोल में आना कठिन ही है. फिर उस दिन की थाना इंचार्ज की वह कुटिल हंसी.

हैड आफिस को ट्रंक-काल कर दिया है. शालिनी को वह सब कुछ नहीं बताया है. व्यर्थ की टैंशन होगी. परतु वह तो बिना पूर्व सूचना के आ गई.

"किसने कहा था आने को. . ." तल्खी भरे स्वर में पूछा.

"आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं. . ." टो टूक उत्तर दे किचिन में चली गयी.

बाहर लेबर बस्ती में बहुत हड़कंप मची है. सब कोई क्रोध में बिफरे. मनेजमैंट के खिलाफ मीटिंग में भाषण दिये गए हैं. यूनियन सक्रेटरी. . . माइक थामे मंच पर खड़ा न जाने क्या क्या अंट-शंट बोले जा रहा है. विशेषकर मैनेजर के लिए. हरीसिंह वाचमैन के आदमी हैं चारों ओर. पूरी सूचना साहब तक पहुंच जाती है. यह भी कि लोहे की कतरन भी ठेकेदार, यूनियन सैक्रेटरी, और पुलिस सब की मिली भगत से हटाई गई है. दास गुप्ता का हिस्सा उसे घर बैठे मिल गया है.

"ठहरो मैं. . . स्वयं चलकर देखता हूं." सुरेश दत्त आतुर कदम रखते चल पड़े. हरी सिंह ने बहुत मना किया. शालिनी ने भी बहुत रोका परंतु वह जो क्रोध का दावानल उसके माथे पर चढ़ आया है वह क्या यूं ही शांत हो जाने वाला है!

इधर हजारों की भीड़ मीटिंग, में जमा है. नारे भाषण न जाने क्या क्या. सुरेश दत्त सतर्क कदमों से रहमत की झुगी तक पहुंच गये.

"बड़े साब आए हैं. ." हरीसिंह के सूचना देने पर हड़बड़ा कर उठ बैठे. रहमत कराह कर नेत्र उघाड़े कि आंखों पर विश्वास नहीं होता.

"आप . . . साब . . ." अस्पष्ट सा कंपकंपाता स्वर . . .

"कैसे हो रहमत . . ." सुरेश का स्वर धीमा परंतु कठोर है. क्रोध से भरा हुआ.

"ठीक हूं . . . साब पर आप . . ."

"हां भाई तुम्हें देखने आया हूं. और यह जानने आया हूं कि हाथ कटने में गलती किसकी थी."

"साब. . . वो . . . वो . . ."

"देखो रहमत केस चलेगा और दोष तुम्हारा ही साबित होगा फिर भी. . . .ये मीटिंग, यूनियन. . ." क्रोध से उसके होठ फड़क रहे हैं.

"साब. . .माफ करें. . .हमने तो बहुत ना बोला था साब. . .वो सैक्रेटरी सब लफड़ा किया साब. . ." सहसा बीच में ही ठहरकर उनके चेहरे की प्रतिक्रिया देखने लगा.

डरी-सहमी उसकी स्त्री एक कोने में खड़ी थी. कोठरी में सामान के नाम पर फूटे बर्तन तार पर लटकते दो-चार फटे वस्त्र देखकर उनका दिल दहल गया.

"तुम्हारे पास आया कोई. . ." उनका संकेत पार्टी वालों से था.

## लघुकथा

### ब्रह्मज्ञान

■ अभिराम

गुरू ने देखा कि शिष्य बार-बार ब्रह्मज्ञान की बात कर रहे हैं. वे जो भी पढ़ाते. . . शिष्य अनसुना कर फिर ब्रह्मज्ञान की बात उठाकर ब्रह्मज्ञान देने को कहते.

हारकर गुरू ने शिष्यों का भोजन बंद करवा दिया. गुरू पढ़ा रहे हैं और खाली पेट शिष्यों की आंतें कुलबुला रही हैं. . . चूहे कूद रहे हैं पेट में.

चार-पांच दिन बाद शिष्यों को नहलाने का आदेश दिया गया. . . और फिर दिया गया भोजन.

अब शिष्य भोजन कर रहे हैं और गुरुजी फिर समझा रहे हैं, "अन्न ही ब्रह्म है. . . !"

---

"कौन आएगा साब. . .उन लोग को तो झगड़ा करने का बहाना. . .मिल गया बस. . ." हताशा से उनका स्वर टूट जाता है.

"हूं. . ." एक भारी स्वर फिर चंद नोट जेब से निकाल कर उसके सिरहाने रख दिये और वापस चले आए. फिर मीटिंग हायर मैनेजमेंट से, यूनियन से. लेबर कोर्ट से केस फारवर्ड कर दिया गया है. सुरेश दो पाट की चक्की के कौल बन गए हैं. रहमत के घर चूल्हा नहीं जलता. फैक्ट्री में तालाबंदी करनी पड़ी.

"अब भूखे मरेंगे तो होश ठिकाने आ जाएंगे. . ." टाइम बाबू कहता है.

"सब साला लोअर कैरेक्टर. . .छोटा जात. . ." दास गुप्ता त्योरी चढ़ाकर बोलता है.

सिंगारी काम पर नहीं आती. किचिन में सामान नहीं बचता. बूढ़ी झमिया के नाती को बासी डबल रोटी भी नहीं मिलती. ना ही दासगुप्ता को रम का पौआ और टाइम बाबू को रात भर सतर्क बैठना होता है. सुरेश दत्त को भी रात रात भर बाहर रहना होता है. शालिनी जागती आंखों से रात बिता देती है. पूरी रात मीटिंग बहस फिर कितने ही मसौदे लिखे जाएंगे, टाइप होंगे. सैम्सन फैक्ट्री गेस्ट हाउस नहीं ठहरता. न जाने बिफरी हुई लेबर क्या कर बैठे.

लॉक आउट तोड़ना कठिन है. लेबर बस्ती में जैसे अकाल पड़ गया. सब को कोई मुंह लटकाए चारों ओर मुर्दनी छाई है. सुरेश भाग-दौड़ करते बेहाल हो गए. दासगुप्ता टाइम बाबू सब कोई उनके कंधे जुआ डाल अलग हट गए. यूनियन प्रेसीडेंट राखाल वर्मा बहुत चालाक दृष्टि रखता है.

नहीं इन बाहरी लोगों की चाल नहीं चलने देंगे. क्यों खाएं यूनियन वाले! मिलना है तो मुआवजा रहमत को ही मिले. जिसने मेहनत की है उसी को मिले. उसका हक. . .



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन होते हैं ये बीच के लोग? नहीं इस कुचक्र को नहीं चलने देंगे.

"साब सैम्सन साब ने दास बाबू को बुलाया है अपने कमरे पर. . ." हरी सिंह सब सूचना देता है. . ."

"अच्छा. . .कब. . .और कौन था साथ में. . ."

"राखाल चटर्जी था साथ में. . .ठेकेदार बाबू भी. . ."

"ओ. . .हो. . .अच्छा. . ." माथे पर हाथ धरे बैठे रह गए हैं. शालिनी न जाने कब उनके पीछे आकर खड़ी हो गई.

"नहीं. . .ऐसा नहीं होने दूंगा. . ." वे दहाड़े.

फिर चक्र आगे भी चला. सुरेश को इनऐफीशियेंसी के आधार पर हैडआफिस ट्रांसफर कर दिया गया था. यूनियन ने सब प्रस्ताव मान लिए. हर्जाना नहीं देना होगा. बूढ़ा रहमत सिर धुनता रहा. राखाल चटर्जी, दास गुप्ता को कोसता रहा. नौकरी के योग्य नहीं रहा. हर्जाना उतना नहीं मिला कि रोटी चल सके. सब कुछ सही हो गया. राखाल बाबू की जेब में बस हरे नोटों की कुछ गड्डियां सरका दी गई हैं. मशीन का चक्का तो चला. मजदूर, मालिक, ठेकेदार, सब का ही तो लाभ है लॉकआउट खुलने में. सुरेश दत्त के व्यक्तित्व की वह भयंकर हार उन्हें समूल नष्ट किये दे रही है. पर नहीं, हार तो उन्होंने कभी स्वीकार नहीं की.

फिर स्वयं ही गाड़ी निकाल ड्राइव करते गए थे. सीधे राखाल को ही पकड़ना है. और ये गोरे छि. . .इस स्तर तक उतर सकते हैं अनुमान भी नहीं था. ये टाइमकीपर. . . दासगुप्ता. . .ठीक है. देख लेंगे. . .यूं हार मानकर बैठ जाना तो उन्होंने सीखा ही कब है!

"अरे ये. . .अकेले कहां जा रहे हो. . ." शालिनी ने टोका था. उसका चेहरा भय से सफेद हो गया.

लेबर बस्ती में तनातनी है. नंगे भूखे लोगों ने उन्हें घेर लिया. आक्रोश की छाप सबके चेहरे पर फैल रही है. . .यही है. . .इसी ने किया. . .कितनों के पेट पर लात मारी है. . . अरे तुमार लरका बिटिया पर परी. . .हमार आत्मा का सराप. . .बूढ़ी छमियां लाठी पटक क्रोध में फुफकार उठी.

बोनट पर ही खड़े हो ऊंचे स्वर में बोलने लगते हैं. भीड़ जुट आई है. उनका ऊंचा गर्जन करता आवेश पूर्ण स्वर सब किसी को स्तब्ध कर गया. बच्चे, बूढ़े, औरत, मर्द सैकड़ों प्राणी गिरते-पड़ते दत्तसाहब को घेर कर खड़े हैं. . .परंतु सन्नाटा सब कोई मुंह खोले सुन रहे हैं. तो. . .तो. . .ये बड़े साब हैं . . .अपने साब. . .अपनी ही व्यथा अपना ही दुख कह रहे हैं. अरे ये उनके. . .साथ नहीं. . .वो राखाल. . .स्साला बदमाश. लोगों को झूठ बोला था. बदनाम किया था मालिक लोगों को.

"दत्त साब. . .जिंदाबाद. . .जिंदाबाद. . ."

"राखाल बाबू. . .मुर्दाबाद. . .मुर्दाबाद. . ."

बाकी बात रहमत ने पूरी कर दी थी. बड़े साब की दया ममता. उनकी जो सहायता वे करते रहे हैं. बिना मांगे चुपचाप बिना किसी से कहे. .

हैड आफिस तक सब सूचना पहुंच गई. सुरेश को फैक्ट्री का पूरा चार्ज दे दिया गया है. सीमेंट के गोदाम, लोहा, ईंट सब पर हरी सिंह के आदमियों का कड़ा पहरा है. राखाल चटर्जी को लेबर बस्ती में खूब लताड़ा गया. रहमत का हाथ मशीन का काम भले ही न कर पाए परंतु वह तो अब उन हजारों लोगों का सुदृढ़ हाथ बन चुका है जो अपना भला-बुरा स्वयं नहीं जानते.

न जाने सांझ को अंधेरे में उनकी ही गाड़ी से टक्कर क्यों हो गई. . .और ट्रक में तो ड्राइवर था ही नहीं प्लास्टर से हाथ पांव सब जकड़ दिया गया है... कभी कभी होश आता है सुरेश को. . .चीख उठते हैं. "बदला . . .हां. . .हां. छोड़ूंगा नहीं. . .स्साले को. . .लेकिन कौन चला रहा था गाड़ी? मस्तक पर जोर डालते हैं. पर सब गडमड हो जाता है. . .शालू तुम डरना नहीं. . .मैं. . .मैं. . ."

● 712, फर्स्ट स्टेज, फर्स्ट क्रास, इंदिरानगर, बंगलौर

---

# शाबास पट्ठे

▣ हरिशंकर परसाई

**बें**चन शर्मा 'उग्र' फक्कड़ लीजेंड थे. अक्खड़, फक्कड़ और बहुत बदजबान. जीवन के अंधेरे से अंधेरे कोने में वे घुसे थे और वहां से अनुभव लाये थे. व्यापक गहन अनुभव उन्होंने ताकतवर भाषा में लिखे हैं. वे महान गद्य लेखक थे. अति यथार्थवादी थे, मगर उनका यथार्थ इतिहास से जुड़ा नहीं था. विद्रोही थे—मगर वह दिशाहीन विद्रोह था. उनसे मेरी एक बार चिट्ठी-पत्री हो गयी. एक प्रकाशक ने मुझे एक कहानी-संग्रह तैयार करने को कहा. उसमें मैंने उग्र की कहानी 'उसकी मां' लेना तय किया. उग्र को लिख दिया कि प्रकाशक सौ रुपये आपको भेजेगा. उन्होंने स्वीकृति दे दी, पर प्रकाशक ने संग्रह छापने का विचार छोड़ दिया. करीब पांच महीने बाद मुझे 'उग्र' का पत्र मिला, जिसमें लिखा था—"वह पुस्तक छपकर कोर्स में लग गयी होगी, खूब बिक रही होगी. प्रकाशक और तुम खूब पैसे कमा रहे होगे, पर मुझे सौ रुपये नहीं भेजे. मैं तुम जैसे हरामजादे, कमीने, बेईमान, लुच्चे लेखकों को जानता हूं, जो प्रकाशक से मिलकर लेखक का शोषण करते हैं." मैंने जवाब में उन्हें लिखा—"प्रकाशक ने वह पुस्तक नहीं छापी, यह सच है. इसलिए आपको पैसे नहीं भेजे गये. जहां तक मुझे दी गई आपकी गालियों का सवाल है, मैंने काफी गालियां आपसे ही सीखी हैं और अपनी प्रतिभा से कुछ और गालियां जोड़कर काफी बड़ा भंडार कर लिया है. मैं आपसे श्रेष्ठ गालियों का नमूना इसी पत्र में पेश कर सकता हूं, पर इस बार आपको छोड़ रहा हूं." इसके जवाब में उनका एक कार्ड आया, जिसपर सिर्फ इतना लिखा था—"शाबास पट्ठे." □

● 'इसलिए' से धी. अ. द्वारा प्रस्तुत



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आठ साल बाद

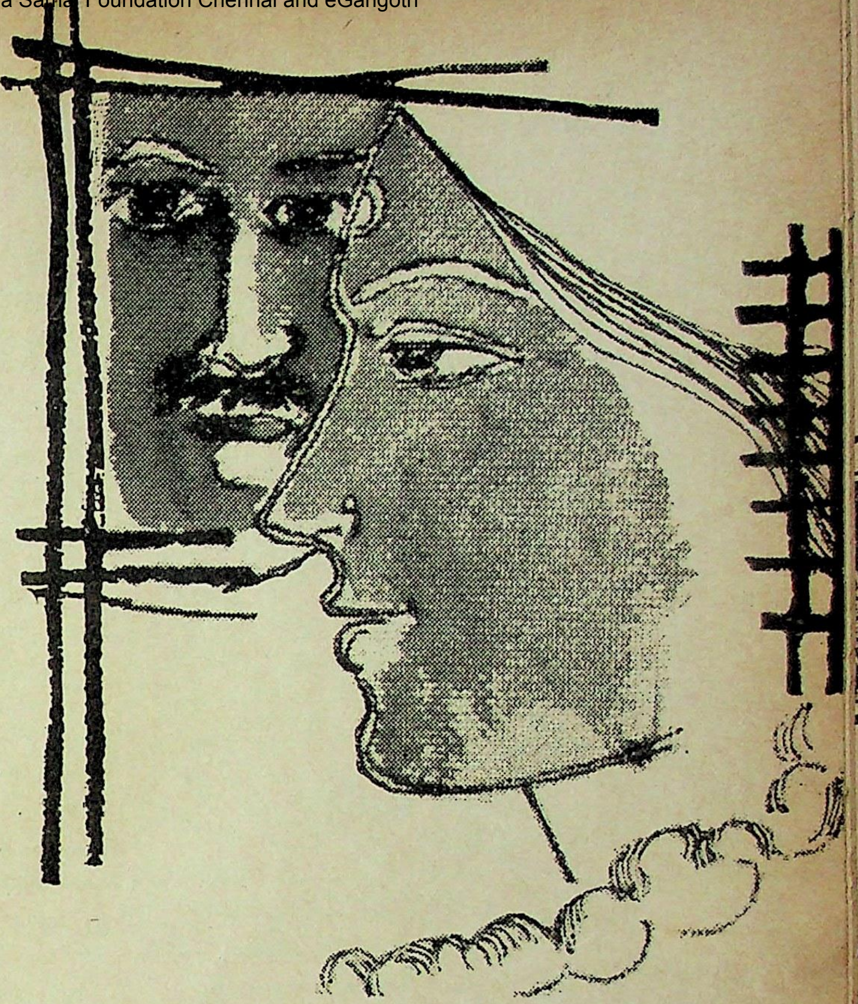

▣ महाराजकृष्ण काव

**क्या कारण है कि आदर्श और मौकापरस्ती के बीच, विपन्नता और संपन्नता के बीच, संघर्ष और आराम के बीच जब चुनाव का सवाल आता है तो जीत हमेशा मौकापरस्ती, संपन्नता और आराम की ही होती है? प्रस्तुत है जीवन के इसी प्रकार के व्यावहारिक सवालों से साक्षात्कार**

एक दिन वह भी आ गया, जब मुझे फैसला करना पड़ा, अगर भारतीय लड़की की नियति को फैसले का नाम दिया जा सके. और फिर बाइस वर्ष की लड़की का फैसला!

जीवन में हारे हुए व्यक्ति को भी भला कोई स्वीकार कर सकता है? अरुण को देखकर दहशत हो उठती थी. मुझे याद है पांच साल पहले का वह दिन, जब वह पहली बार हमारी तिमंजला बिल्डिंग में आया था.

उस वक्त वह बहुत सजीला था. उम्र बाइस के करीब रही होगी. आंखें बड़ी-बड़ी थीं, उनका रंग हल्का भूरा था, जैसा कि शहद का, या शायद मेरी उमंगें ही अभी ताजा थीं. रूमानी उपन्यासों पर पले मेरे मानस-पटल पर उसकी तस्वीर किसी राजकुमार-सी अंकित हो गयी थी.

वह कालेज से निकला ही था. जब कभी सीढ़ियों पर मैं उससे रू-ब-रू होती, वह आंख भरकर मुझे देखता था. मैं यह हमला सहने के काबिल अभी न थी. मेरी पलकें सहज ही झुक जातीं. बाद में मैंने कनखियों से देखना सीख लिया था.

फिर वह दिन भी आया, जब उसने मुझे रोककर कहा, "इंदुजी, यह किताब . . ." और मेरा उत्तर सुने बगैर आगे बढ़ गया. मध्यवर्गीय मान्यताओं से जुड़े मेरे मन पर जैसे एक भावनात्मक वज्रपात हुआ. कुछ पल तो मैं हतप्रभ-सी किताब को निस्पंद हाथों में लिये ठिठकी खड़ी रह गयी. फिर 'कोई-देख-लेगा' के भय को लेकर वापस लौट पड़ी.

पास के ही एक पार्क में जाकर पुस्तक को खोला तो देखा, एक उपन्यास था. पर किताब का तो बहाना था. अंदर नीले रंग का एक लिफाफा था और उसमें उसी रंग का मुड़ा हुआ कागज. कागज पर कविता थी--एक प्रेम कविता. मुझे कविता बहुत अच्छी लगी. शायद मुझे अच्छी और बुरी कविता की पहचान न तब थी और न अब है. कविता में चांद की तारीफ़ थी, प्यार का इजहार था, नैनों के कमल खिलने की बात थी. मेरे अंग और रंग का चित्रण ऐसा था कि मैं स्वयं को पहचान न सकी. कवि की नजर थी--मेरा अहं फूला न समाया. बहुत अधकचरी और बचकानी बातें थीं.

अरुण सबसे ऊपर की मंजिल पर बरसाती में रहता था. एक ही कमरा था. खुद ही खाना पकाता, खुद ही कपड़े धोता. कभी कभार तार पर कपड़े सुखाने निकलता तो उसकी नजर हमारी खिड़की पर लगी कुछ खोजती रहती. मैं भी मौका लगने पर पर्दे के पीछे छिपकर उसे देखती.

स्थानीय कालेज में उसे लेक्चरर की नौकरी मिल गयी थी. मैं भी कालेज जाने लगी थी. पहले कवि सम्मेलन की बात सुनती तो मैं कोसों दूर भागती, पर अब कविता से मुझे एक नजदीकी रिश्ता लगता. इस बार कवि सम्मेलन हुआ तो मैं भी गयी. अरुण स्टेज पर आया तो खासा शोर हुआ, विशेषकर लड़कियों में कानाफूसी बढ़ गयी. अपनी दाढ़ी और लंबे बालों, खादी के कुर्ते और 'दुनिया से तंग, आ गया, हूं' के भाव से वह और भी रूमानी लग रहा था.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने एक बेहद दर्दनाक कविता सुनायी. प्रेमी अपनी संगदिल प्रेमिका की बेवफाई पर आंसू बहाता है. सच मानिए, शब्द तो मर्मभेदी थे ही, उसका तरन्नुम और भी जानलेवा था. एक बार तो मैं भी हिल गयी.

इन्हीं दिनों हमारी बिल्डिंग में एक नया किरायेदार आया. अट्ठाइस-उनतीस वर्ष का युवक, वह काफी मिलनसार था. मेरे भाई से उसकी अच्छी दोस्ती हो गयी. पता चला कि मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ पाया था. कोई घर की लाचारी नहीं थी, खाता-पीता परिवार था. बस, पढ़ाई से बोर हो गया. उसे शेक्सपीयर और इलियट, प्रसाद और निराला कुछ-कुछ मसनवी लगे. वह ठोस कल-पुर्जों और बही-खातों से जूझना चाहता था.

उसके पिता ने स्टोन-क्रशर खुलवा दिया. पहले-पहल तो वह बिदका. धीरे-धीरे उसे काम में मजा आने लगा. पिता से आंख बचाकर पैसा बनाने का भी मौका था. उसकी जेब गर्म रहने लगी. इन्हीं दिनों उसने अलग कमरा ले लिया.

मुझे शुरू से ही लगा कि श्याम कुछ भिन्न प्रकार का व्यक्ति है. उसमें भावुकता नहीं के बराबर ही थी, पर पैर जमीन पर खड़े दिखते थे. लगता कि उसमें आत्मविश्वास है और सफल होने की ललक भी. चेहरा सुंदर न था, पर मर्दों की सुंदरता को उस तरह नहीं लिया जाता, जिस तरह स्त्रियों की सुंदरता को लोग लेते हैं.

वह खूब देर से लौटता और कई बार शराब पीकर. तब उसकी कुछ-कुछ लड़खड़ाती बेसुरी आवाज में किसी फिल्मी धुन का टोटका सीढ़ियों से सुनाई पड़ता. एक दिन तो सारी कोठी में उसकी आवाज गूंज उठी, जब वह अपने नौकर पर चीखा, "मीट लाओ . . ."

कभी-कभी उससे जब मेरी मुठभेड़ होती तो वह अनायास ही अपनी मूंछ को दाहिने हाथ से ताव देने लगता. उसकी यह हरकत मुझे उसका गुंडापन लगती. मुझे उससे डर भी लगता, जैसे वह हिंदी चलचित्र का कोई विलेन हो.

मैं भी उस उम्र में थी, जहां यौवन पहली हिलोरें लेता है. एक तरफ अरुण की खूबसूरती मुझे आकर्षित करती, पर लगता कि उसमें कहीं जोर, हिंसा और सफलता का अभाव है. दूसरी ओर श्याम की तंदुरुस्त बदसूरती भी खींचती, पर लगता कि उसमें कर्कशता और वहशीपन भरा है.

**दि**न गुजरते गये. हमारे कालेज में इन्हीं दिनों एक जबरदस्त हंगामा हुआ. लेक्चररों में अशांति फैल गयी. अरुण बगावत का लीडर था. हुआ यह कि प्राइवेट कालेज होने के नाते प्रबंधक पूरी रकम की रसीद पर दस्तखत कराते थे, पर पैसे कम देते थे. लेक्चररों की मांग थी कि उन्हें पूरा वेतन दिया जाये. हड़ताल हुई. एक दिन पुलिस भी आयी. लाठी चली. अरुण का सिर फूटा और वह गिरफ्तार भी हुआ. हड़ताल का नतीजा यह हुआ कि तनख्वाहें बढ़ गयीं, पर अरुण को नौकरी से निकाल दिया गया.

हम विद्यार्थियों में दो गुट थे. कुछ कहते, 'भई, प्रोफेसर अरुण का जवाब नहीं. क्या आदर्शवादिता है. नौकरी खो दी, पर मोर्चा मार लिया.' मेरा सिर गर्व से ऊंचा होता, जैसे किसी अपने की तारीफ सुनकर होता है. कुछ लोग कहते, "भई, अहमक हो तो प्रोफेसर अरुण जैसा. भला देखो, इतनी देर से यह सिलसिला चल रहा था इसी को क्या सूझी कि झगड़ा मोल ले बैठा. और जब बात बढ़ी तो और लोग तो बुद्धिमत्ता से पीछे हट गये, आपको भिड़ा दिया. है न बेवकूफी!" मुझे लगता कि मेरा सिर शर्म से झुक गया है.

उधर श्याम के कारोबार में खूब वृद्धि हुई. मुनाफा कमाया तो उसका साहस बढ़ा. उसने एक रेस्तरां भी खोल दिया. उसकी जेब में नोटों की सरसाहट बढ़ती गयी. अब उसका स्टैंडर्ड बढ़ गया. उसने स्कूटर बेचकर कार खरीद ली. उसे अब एक बड़े फ्लैट की जरूरत महसूस हुई.

हमारे सामने के किरायेदार फ्लैट छोड़कर चले गये तो श्याम ने मकान मालिक से फ्लैट मांगा, पर उन्होंने इंकार कर दिया. कोई दूसरा होता तो चुप कर जाता. मुझे भइया से पता चला कि श्याम ने मुहल्ले के मशहूर बिल्ले को एक बोतल और पांच सौ रुपये दिये. बिल्ला हमारे आंगन में नंगा चाकू लेकर खड़ा हो गया. उसके सामने ही श्याम ने ताला तोड़ा और फ्लैट पर कब्जा कर लिया. मकान मालिक को मजबूरन स्थिति से समझौता करना पड़ा.

भइया ने कहा, "आदमी हो तो ऐसा. मकान मालिक को सबक सिखा दिया." अरुण कहता है कि यह समाज-विरोधी कृत्य है. उसे तो बड़े-बड़े शब्द बनाने आते हैं. लगता है कि उसे श्याम की सफलता से ईर्ष्या है.

मैंने सुन लिया. मेरे लिए कुछ भी निर्णय करना

लघुकथा

# सवाल-जवाब

▣ चंद्रेश

**पू**रे विश्वविद्यालय में प्रो. चौधरी को कौन नहीं जानता. उनकी कई 'खूबियों' की चर्चा विश्वविद्यालय में प्रायः हुआ करती है. अपने विषय के अधिकारी विद्वान हैं. वे स्वयं को कई विशेष-पत्रों का विशेषज्ञ मानते हैं. गो कि लोग ऐसा नहीं मानते, लेकिन उनके मानने या न मानने से क्या फर्क पड़ता है?

भले ही बी. ए., एम. ए. में चौधरीजी का रिजल्ट कुछ भी रहा हो. . .सेकेंड क्लास या थर्ड क्लास. उन्होंने अपने निर्देशन में छात्रों को शोध कराया हो या न कराया हो, पूरे विश्वविद्यालय में वे हिंदी की एक बड़ी हस्ती हैं, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता.

चौधरीजी का पढ़ाई का अपना खास ढंग है. क्लास में पढ़ाई के बीच यदि कोई छात्र उन्हें टोक दे तो यह उन्हें नागवार गुजरता है. तब होता यह है कि सवाल पूछने वाले छात्र को उसके सवाल का जवाब देने के बदले वे उस छात्र से ही सवाल पर सवाल की झड़ी लगा देते हैं. ऐसे में कोई छात्र उनसे सवाल पूछने की हिम्मत ही नहीं करता. छात्रों



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उनसे सवाल पूछने का मौका सप्ताह में एक ही दिन यानी ट्यूटोरियल क्लास में मिल पाता है.

एक दिन ट्यूटोरियल क्लास में एक छात्र उठ खड़ा हुआ, "सर, एक सवाल है कि..." प्रश्न पूरा होने के पहले चौधरी जी ने उस छात्र को टोकते हुए कहा, "भई, तुम तो बराबर कोई-न-कोई सवाल किया करते हो. तुम दूसरे दिन पूछना. आज किसी दूसरे छात्र को मौका दो..."

इसी बीच एक दूसरा छात्र उठा. उसने चौधरीजी से एक सवाल किया. सवाल सुनकर थोड़ी देर तो वे ठिठके, लेकिन तुरंत तेवर बदलते हुए प्रश्न पूछने वाले छात्र की ओर मुखातिब हुए, "वाह, बहुत खूब. जब आपको इस मामूली से सवाल का जवाब नहीं मालूम तो आप एम. ए. में कैसे आ गये? ऐसे छोटे-मोटे सवालों का जवाब यदि मैं देने लगा तब तो हो गया, बैठिए आप..."

तभी कोई तीसरा छात्र उठ खड़ा हुआ, "सर, जरा इस सवाल का..." जवाब में चौधरी जी ने चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए उस छात्र से कहा, "तुम्हारा सवाल बिल्कुल ठीक है. लेकिन सब एक ही दिन. कुछ सवाल दूसरे दिन के लिए भी तो रहना चाहिए..." घंटा बज चुका थी. "अच्छा आज इतना ही..." कहते हुए चौधरीजी क्लास से निकल पड़े. □

● आदमपुर, भागलपुर-812001

---

कठिन हो गया था. हां, अरुण को देखती तो दया भी आती. उसकी आंखें और बड़ी दीखने लगी थीं. पत्रिकाओं में उसकी कविताएं पढ़ती. लगता, उसके अंदर विद्रोह का दावानल सुलग रहा है. फिर एक दिन सुना कि एक पत्रिका में उसे नौकरी मिल गयी है, पर अरुण से यह नौकरी भी निभ न सकी. उसने स्टोन क्रशरों के मजदूरों की शोचनीय हालत पर एक लेख लिखा. पत्रिका के मालिक श्याम के दोस्त थे. तय हुआ कि लेख नहीं छपेगा. बल्कि अरुण से कहा गया कि वह एक दूसरा लेख लिखे, जिसमें श्याम का क्रशर राष्ट्र के एक प्रगतिशील कारखाने के एक नमूने के तौर पर पेश किया जाये. अरुण को यह गवारा न था. उसने त्यागपत्र दे दिया.

एक दिन सीढ़ी पर मिला तो रुक गया. दाढ़ी बढ़ी हुई थी, बाल रूखे हो चले थे. केवल आंखें गर्म कोयले जैसी सुलग रही थीं. मुझे देखकर उसने एक गहरी सांस भरी और एक नीला लिफाफा पकड़ा दिया.

पत्र पढ़ा तो उसमें विवाह का प्रस्ताव! उसने लिखा था कि अपने आदर्शों के लिए लड़ने की सारी क्षमता उसे मेरी मृदु मुस्कान से ही मिली थी. मुझे अजीब-सा लगा. बहुत देर तक मैं पत्र को बार-बार पढ़ती रही. दिल के अंदर गुदगुदी भी हुई, साथ ही मन में भय भी समा गया. अरुण जैसे आदर्शवादी से शादी का मतलब था--उम्रभर परेशानी, दरिद्रता और दुःख.

भाग्य की बात! उसी दिन श्याम के पिता बाबूजी के पास रिश्ते की बात लेकर आये. मैंने पर्दे के पीछे से सुना. लगा कि मैं हीरोइन हूं और एक ऊंचे पहाड़ पर अमिताभ बच्चन और प्रेम चोपड़ा मुक्केबाजी से इस बात का निर्णय कर रहे हैं कि मैं किसकी पत्नी बनूंगी.

बाबूजी का खयाल था कि श्याम अच्छा वर है. उसका घर अच्छा है, पैसे वाला है. शिक्षा कम हुई तो क्या--लड़का कमाऊ होना चाहिए. भइया का वोट भी श्याम के हक में था. माताजी ने शराब और बिल्ले की बात दबी जबान से की, तो दोनों उनसे उलझ पड़े. आजकल के जमाने में शराब कोई बुरी चीज थोड़े है. और श्याम तो अंग्रेजी पीता है--वह भी स्कॉच.

मुझसे पूछने की जिम्मेदारी भइया ने अपने ऊपर ले ली. मैं क्या कहती? मेरा अनुभव भी क्या था? फिर मेरे मन में कोई बात साफ न थी. मेरा यह भी कतई इरादा न था कि मैं मां की तरह बर्तन मांजूं और कपड़े धोऊं. मैं पलंग पर रेशमी साड़ी पहनकर आराम करना चाहती थी. और रही अरुण की बात. माना कि वह शब्दों का जादूगर था, पर शब्दों से जिंदगी थोड़े ही चल सकती है? क्या जीवन में असफल व्यक्ति को वरण करना चाहिए?

आठ साल बीत गये. इस बीच अरुण मुझसे कभी न मिला. सुना कि वह दिल्ली छोड़कर चला गया है. एक छोटे-से कस्बे में रहने लगा है, स्वतंत्र लेखन करता है. उसकी कविताएं कभी-कभी देखती थी. लगता कि मेरा रूप उसकी आंखों में अब भी बसा हुआ है.

मेरे दो बच्चे हो गये थे. घर में किसी चीज की कमी थी नहीं. न ही कुछ काम करने को रहता. नौकरों के होते मुझे कौन करने देता. समय के रीतेपन को मैं सिनेमा, उपन्यास, ताश और तली हुई चीजों से भरने लगी. जाहिर है कि डील-डौल में सेठानी-सी दिखने लगी थी.

उस दिन मैं अपनी किट्टी-सहेलियों के साथ एक रेस्तरां में बैठी किसी मजाक पर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. मैंने देखा तक नहीं कि कब एक खादी के कुर्ते-पाजामे वाला आदमी सामने से गुजरा.

वह आदमी रुका. बड़े-बड़े बाल और दाढ़ी, गहरी चमकीली आंखें. उसने मुझे देखा. लगा कि वह मुझे पहचानने की कोशिश कर रहा है. फिर लगा कि वह मुझे न पहचानने की प्रार्थना कर रहा है.

कुछ पल वह निर्निमेष देखता रहा, फिर होंठों ही होंठों में बुदबुदाया, "इंदु, तुम....?" मेरे देखते ही देखते उसकी आंखों में कुछ भर-सा गया. उसके प्रश्न में लगा कि ढेर सारे प्रश्न बंद हैं.

अचानक वह मुड़ा और रेस्तरां से बाहर चला गया. तब मुझे खयाल आया, ओह! यह तो अरुण था.

काफी दिनों से अरुण की कोई कविता किसी पत्रिका में पढ़ने को नहीं मिली. □

● सी-11 बेमलोई, शिमला (हिमाचल प्रदेश)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तिराहा बहराम खां : बेलगाम एय्याशी पर ऐतराज शराफत का

**तिराहा बहराम खां शरीफों की बस्ती थी जिसके दामन पर दाग लगाने का प्रयास किया जा रहा था. भला यह सब कुछ भले घरों की बहन-बेटियां देखेंगी?...अहसानुल हक यह सोचकर ही सिहर उठे और उन्होंने तरकीब ढूंढ़ ही निकाली. ..क्या थी वह तरकीब... क्या वह कामयाब हो सकी...?**

## गलियां : जहां इतिहास कैद है!

**बाला दुबे**

सन् 1857! लालकिले में न जाने कितनी एय्याशियों की कहानियां अंधेरे कोनों में दफन पड़ी थीं. दूर क्यों जायें, स्वयं बहादुरशाह जफर के खिलाफ उसके ही पिता अकबर शाह द्वितीय ने अंग्रेजों को अर्जी देकर बतलाया था कि बहादुर शाह का नाजायज ताल्लुक उसकी एक बेगम से है.. .यानी सौतेली मां के साथ सौतेले बेटे का संबंध. और मिटते हुए मुगलों की दबी एय्याशी का धुआं दिल्ली में भी फैल चुका था. शहर में कई ऐसे अड्डे थे जहां 'शरीफ-बदमाश' रईस मन बहलावे को जाते थे. तिराहा बहराम खां में भी एक बिगड़ी हुई मुगल शहजादी रहती थी—शहजादी फरखंदा जमानी स्वच्छंद, उद्दंड, बेलगाम. बहुत ही शानदार हवेली थी शहजादी फरखंदा की, पर थी शरीफों की बस्ती में. उसके ऐन सामने रहता था मुफ्ती इकरामुद्दीन का बेटा अहसाननुल हक जो खुदा से डरता था और शरीफों की उठती हुई अंगुली से सहमता था.

अहसानुल हक तो उस दिन चौंका था जब शहजादी फरखंदा की हवेली से ततकार और विरकिट के अलावा खुली हंसी की कुलकुल भी गूंजने लगी थी. और जब उसने अपनी खुली आंखों को और भी खोलकर देखा तब वह सक्ते में आ गया. बादशाह बहादुर शाह जफर के शहजादे अबू बकर अपने मकहते हुए मुंह से इश्किया गजल के कुछ शेर गुनगुनाते हुए शहजादी फरखंदा की हवेली में घुस रहे थे. शहजादा अबू बकर—हां रहे स्वतंत्रता संग्राम की सेना के कर्नल एवं कमांडर इन चीफ, एय्याश, नाकाबिल, बेशऊर. तभी तो तंग आकर बहादुर शाह जफर ने उन्हें इस पद से हटा दिया था. और पदच्युत होते ही उन्होंने अब सरदा मरदी एय्यशी करनी शुरू कर दी. उधर हिंदुस्तानी फौज कश्मीरी गेट पर तोपों की गरज और गोलियों की तड़तड़ाहट में उलझी रहती, इधर अबू बकर जैसे कई बिगड़े रईस तबलों की ना धी धी ना और हसीनों की सरगम आलाप में खोये रहते.

तिराहा बहराम खां शरीफों की बस्ती थी जिसके दामन पर दाग लगाने का प्रयास किया जा रहा था. भला यह सब कुछ भले-घरों की बहन-बेटियां देखेंगी? अहसानुल हक यह सोचकर ही सिहर उठे और उन्होंने एक तरकीब ढूंढ़ निकाली. जब भी शहजादा अबू बकर डगमगाते हुए शहजादी फरखंदा की हवेली में आते तब अहसानुल हक अपने घर के सामने मूढ़ा डालकर बैठ जाते. अहसानुल हक का घर शहजादी फरखंदा के घर के ऐन सामने था. जब अहसानुल हक ने देखा कि उनसे नजर मिलाकर भी शहजादा अबू बकर कतराकर निकलने लगा है और सौ फीसदी चिकना घड़ा बन चुका है तब उन्होंने अपने मूढ़े के अलावा चार-पांच मूढ़े और भी डलवाने शुरू कर दिये जिन पर आसपास के पास-पड़ौसी भाई भी बैठकर सामने की हवेली में हो रही इश्क की नौटंकी देखने लगे. जब शहजादा अबू बकर अपनी ऐंठती जुबान से शेर गुनगुनाते निकलते तब अहसानुल हक और बुलाये हुए अन्य दर्शक भाई खांसे-मठार भी देते जिससे कि शहजादा साहब यह जान लें कि तिराहा बहराम खां के रहने वाले न तो अंधे हैं और न ही बहरे. शहजादा अबू बकर इस इशारे को समझे हों या न समझे हों पर ऊपर से झांकती हुई शहजादी फरखंदा फौरन ही सब कुछ समझ गयी. दूसरे दिन शहजादी फरखंदा ने कूड़मगज शहजादे को समझाया कि मुफ्ती इकरामुद्दीन का बेटा अहसानुल हक उनके चालचलन पर एतराज की अंगुली उठाने लगा है. मिर्जा अबू बकर ने तब अपने कान चमके हुए घोड़े की तरह खड़े किये और बहुत ही गंभीर स्वर में 'हूं' कहा था.

3 जुलाई, 1857!

इस दिन भरी दोपहरिया में मिर्जा अबू बकर फरखंदा की हवेली में दाखिल हुए. आव-भगत हुई. खाना-पीना और फिर जश्न-मेले हुए. और जब रागरंग का दौर शुरू हुआ तो महफिल में ठुमरी इस कदर मचली कि यह भी पता नहीं लग पाया कि दिन शाम के अंधेरों से ढकने लगा है. और जब मिर्जा अबू बकर डगमगाते हुए जीने से उतरे तब उन्हें दो बातें बहुत ही अखरीं. एक तो बदस्तूर अहसानुल हक अपनी मंडली के साथ ऐन हवेली के सामने धरना दिये बैठे थे और दूसरी हवेली के सदर फाटक की चाबी चौकीदार कामदार खां अपने ही साथ ले गया जिससे मिर्जा एक तरह से नगर बंद से हो गये.

इन दोनों नागवार वारदातों ने मिर्जा साहब का मूड खराब कर दिया और उनके अंदर की शराब बोलने लगी. उन्हें यह शक भी हो गया कि फाटक बंद करके चौकीदार को खिसका देने में अहसानुल हक का हाथ है.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस फिर क्या था, मिर्जा अबू बकर बारूद की तरह भड़क उठे और शहजादी फरखंदा की हवेली गाली-गलौज और लीजियो-दीजियो से भर गयी. तब तक कोई बदहवास नौकर भागकर फैज बाजार गया जहां चौकीदार कामदार खां इतवारी मियां की दूकान पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे. चौकीदार कामदार खां लइयां-पइयां भागकर आये और सदर दरवाजा खोल दिया.

बाहर निकलते ही मिर्जा अबू बकर ने अपने फेंटे से तमंचा निकाला और अहसानुल हक पर दाग दिया. नशे के कारण निशाना चूक गया जिससे अहसानुल हक तो खैर बच गये पर तिपाई पर रखी सुराही जाती रही. अहसानुल हक की मंडली जिधर सींग समाया भाग निकली. और अहसानुल हक लपककर अपने घर में घुस गये और दरवाजा बंद कर लिया. अबू बकर ने अपनी तलवार से दरवाजे पर कई वार किये और फिर अपने नौकरों को हुक्म दिया कि वे शहजादी फरखंदा बेगम की हवेली की छत पर चढ़कर वहां से अहसानुल हक के घर पर ईंट-पत्थर फेंकना शुरू कर दें. नशे में धुत्त अबू बकर फिर डकराये, "बुलाओ तोपखाने को, रिसाले को, प्यादों को. लूट लो इस अहसानुल हक के बच्चे के मकान को. मार डालो इन सबको."

मिर्जा साहब ने यह कहकर इधर-उधर तमंचा दागना शुरू कर दिया जिससे जुम्मन बाई और करीमा भिस्ती घायल हो गये. तभी न जाने किसी अल्लाह के बंदे ने शहर के नायब कोतवाला खुदा बख्श खां को खबर कर दी कि तिराहा बहराम खां में गोली चल गई है. नायब कोतवाल साहब कोतवाली-अंदाज में अपना तमंचा लटकाये मौका-ए-वारदात पर अपने कोतल घोड़े पर बैठे हुए आ पहुंचे. जैसे ही मिर्जा की नजर कोतवाल साहब पर पड़ी कि उन्होंने फौरन ही उन पर दो नजरें इनायत साथ-साथ कीं—पहले तो अपने हाली-मवालियों को इशारा दिया जिससे कि उनके एक नमक हलाल प्यादे ने कोतवाल साहब को टांग पकड़कर नीचे घसीट लिया और जैसे ही कोतवाल संभलकर उठे तो मिर्जा ने अपना तमंचा उन पर चला दिया जिससे खैर कोतवाल साहब अल्लाह को प्यारे तो नहीं हुए पर गोली उनके कंधे को छीलती हुई पास के मकान की एक चौखट में जा धंसी. उनके घोड़े को छीनकर तब तक मिर्जा साहब का एक ताबेदार वहां से चलता बना और कोतवाल साहब अपने जाते हुए घोड़े को टुकुर-टुकुर देखा किये. तब मिर्जा अबू बकर बावले ऊंट की तरह डकराके बोले, "लूट लो आसपास के मकानों को." इस हुक्म को सुनकर उनके फर्माबरदार खुश हुए और उन्होंने बड़े सलीके से तिराहा बहराम खां की बस्ती को लूटना शुरू कर दिया. मियां अहसानुल हक के मकान को मिर्जा साहब के सिपाहियों ने कुछ ज्यादा ही हमदर्दी से लूटा और कुछ अमन पसंद पड़ौसियों में बाकायदा जूते भी लगाये जिससे वहां हो रहा ड्रामा और भी रंगीन हो गया.

चौकीदार कामदार खां की गुलाबी पगड़ी उतारकर छीन ली गयी और उनकी तलवार को एक भाई अपनी कमर में बांधकर निश्चिंत होकर चल दिया. सबसे ज्यादा किरकिरी कोतवाल साहब की भरी बसती में हुई. टांग पकड़कर घोड़े से घसीटे गये, कंधे में गोली छिटककर निकल गयी, पिटाई हुई और फिर घोड़े को मार लोग उन्हीं की आंखों के सामने लेकर नौ दो ग्यारह हो गये. तिराहा बहराम खां में हाहाकार मच गया. मिर्जा अबू बकर थोड़ी देर बाद वहां से इस अंदाज से गये मानो कोई पहलवान दंगल जीतकर कूच कर रहा हो.

दूसरे दिन अहसानुल हक 'रहम-रहम' चिल्लाते हुए बादशाह बहादुरशाह जफर की देहरी जा पहुंचे. उन्होंने बाकायदा लूटे हुए माल की फेहरिस्त भी बादशाह को पकड़ायी जिसमें लिखा था कि नीचे लिखे हुए सामन को लूट कर ले जाया गया है और तमाम चीजों की फेहरिस्त दर्ज थी.

मियां अहसानुल हक ने दरख्वास्त की कि उनको लूटा हुआ माल वापस दिलाया जाये. नायब कोतवाल खुदाबख्श खां ने भी अपनी अर्जी बादशाह को दी कि छीना हुआ घोड़ा और तमंचा वापस किया जाये.

बादशाह जफर वैसे ही लड़ाई की कछुआ-चाल से दुखी थे. साहबजादे के कारनामे से और भी परेशान हो उठे और उन्होंने मिर्जा अबू बकर को लिखकर आदेश दिये कि अहसानुल हक का सारा सामान, चौकीदार कामदार खां की गुलाबी पगड़ी और तलवार एवं नायब कोतवाल साहब का तमंचा और घोड़ा फौरन वापस किया जाये. हुक्का के जारी होने के एक दिन बाद नायब कोतवाल खुदाबख्श खां के सईस जग्गा ने उन्हें खबर दी, "हुजूर, आपका घोड़ा मैंने पहचान लिया है. ऐलनबरो टंकी के पास जो रिसाला पड़ा है, वहीं पर वह बंधा खड़ा है."

लूटा हुआ सामान वापस किया गया या नहीं इस के बारे में तो कुछ पता नहीं चल पाया पर अलबत्ता इस वाकये का पूरा ब्यौरा बाद में अंग्रेजों की अदालत में जरूर दिया गया—गदर नाकामयाब होने के बाद. इस अर्जी को लेकर ही अंग्रेजों ने बहादुरशाह जफर के मुकद्दमे के समय यह सिद्ध किया कि दिल्ली में कितनी बदअमनी फैली हुई थी—सन् 1857 से लेकर सन् 1858 तक. □

## —चलते-चलते—

**चल यार, आज दो घूंट...**
**हो जाये पर एक शर्त है...**
**क्या?**
**शराब पीते वक्त पालिटिक्स और रिलीजन डिस्कस नहीं करोगे...**
**क्यों?**
**एक वक्त में एक ही नशा काफी होता है! बेवकूफ! तीन-तीन नशे एक साथ करोगे तो जिंदा कैसे बचोगे?** □

—कमलेश भारतीय



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# लड़ाई

• देशबंधु

दिवाकर की बात पर उसने सोचा उसे वहां से उठ जाना चाहिए. यानी उसे ऐसे कोण पर होना चाहिए जहां उसका चेहरा दिवाकर के ऐन सामने न पड़ता हो. यह उसने अपने अंदर से गुजरती पूर्व परिचित मगर भयानक अनुभूति के तहत सोचा. उसे लगा, वर्षों पहले पैदा ग्लानि-जनक यंत्रणा को उसने जिस सफाई से खत्म कर दिया था, जो अब तक तिल भर भी नहीं बची थी, बहुत-बहुत नीचे पक जायेगी. अपने चेहरे पर सौम्यता का पुट देकर वह कुर्सी से उठ गया. खिड़की का परदा हटाकर बाहर देखने लगा. बाहर कोरा अंधकार था. नीचे से नहर की आती आवाज उसके कानों में बह रही थी. सामने दूर तक चली गयी काली पहाड़ी की धूमिल रेखाएं दिखाई पड़ रही थीं. ये सब उसे यहां के माहौल से जुड़ी बहुत पहले की अपनी मनःस्थितियों का एहसास करा रही थीं. उसे लगा उसका चेहरा निरंतर सिकुड़ता जा रहा है. एक बेचैनी-सी उसके अंदर भरती चली जा रही है. उसने सोचा कहीं दिवाकर उसकी उद्विग्नता को भांप न ले. कुछ क्षण उसने कुछ फालतू-सी और हल्की-फुल्की बातें सोचकर निकाल दिये. अपने अंदर की सारी तल्खी पुंछ गयी महसूस कर वह दिवाकर की ओर मुड़ा. मेज पर रखी डिब्बी से एक सिगरेट निकाली. जलाकर स्थिरता से एक कश खींचा और दिवाकर के सर के ऊपर देखने लगा. "तुमने कुछ कहा नहीं."

वह सावधानी से उसके चेहरे पर नजर ले गया. वहां कुछ भरा-भरा था. उसे अपना सब कुछ खाली-खाली-सा लगा. मुंह का धुवां हवा में फेंककर उसने यही पूछा, "क्या?"

"वही, मैं नहीं समझता. इतने वर्ष बाद भी तुम उतने ही कूढ़-मगज हो सकते हो!" दिवाकर ने भी एक सिगरेट निकाली और फूंकने लगा.

उसे लगा दोनों किसी चीज को रोकना चाह रहे हैं. जो बाहर आ जाने पर अप्रिय-सी लग सकती है. दिवाकर ने उससे पूछा है, क्या उसे इस यांत्रिक व्यवस्था से घुटन महसूस नहीं हुई, जिसमें एक आदमी कोई वकत नहीं रखता? वह आदमी जिसे अपने अधिकारों की सड़ी हुई लाश से चिमटकर रोना पड़ रहा है, इस व्यवस्था में? वह कुछ भी कहने में असमर्थ है. उसे इस जवाबदेही से बचना ही है. नुकीले दांतों में भिंचकर निश्चयात्मक शब्द विकृत होकर उसके दिमाग को लहूलुहान करने लगे. वह क्रोध से कांपता हुआ, मुट्ठियां भींचकर गालियां दिये जा रहा था. किसी ऐसी चीज को जो उसके सामने स्पष्ट नहीं थी, पर जो बेतरह तंग करने पर तुली थी. क्या वह चीज जरूरत से ज्यादा मोह का सैलाब है या उसकी हद दरजे की कायरता? उसे लगा, आज तक उसके जिस्म में कमजोरी का सड़ता हुआ खून ही बहता आया है. जिस खून में सिंचकर उसके दिमाग ने जगह-जगह आत्म-ग्लानि के फफोले उगा दिये हैं. उसका दिमाग फिर पारे-

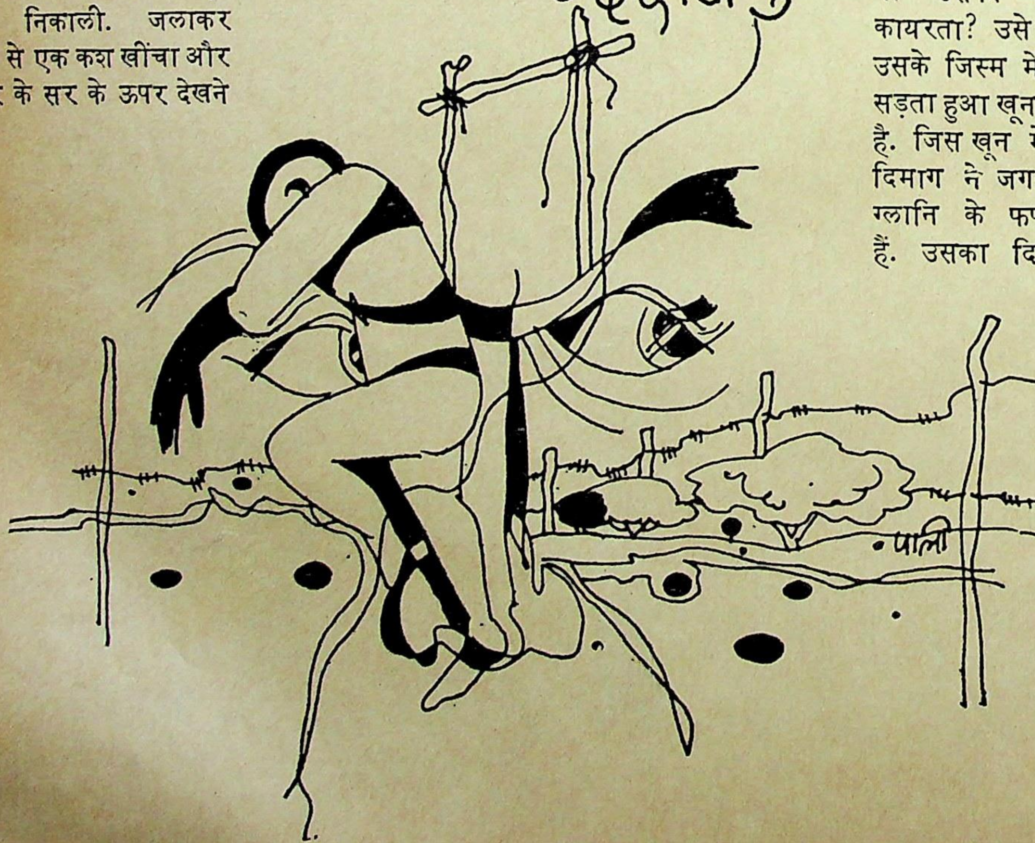


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**दरअसल वह एक लड़ाई थी जिसे वह लड़ रहा था . . .पर जिसके खिलाफ? कितना समय लग गया था उसे अपने असली दुश्मन को पहचानने में . . . प्रस्तुत है 'आते हुए लोग' शृंखला की अट्ठाइसवीं कड़ी**

सा उछलने लगा. वह खत्म कर देगा! आग लगा देगा सबको! वह अब नहीं बर्दाश्त करेगा--कुछ भी हो, किसी को भी! लेकिन नहीं, वह सबके नाम पर सिर्फ अपने को ही खत्म कर सकता है. कर रहा है.

उसने अपने को फिर असहज-सा होता महसूस किया तो वह बाहरी स्थिति में लौट आया. दिवाकर अपने सूखे चेहरे से अपनी नंगी बाजुओं की मरी हुई मछलियां बड़ी उदासी से देख रहा था, अपनी पतली उंगलियों से छूकर. उसके चेहरे पर एक खास किस्म का भोलापन फैला हुआ था. जो एक अति संवेदनशील व्यक्ति में ही देखने को मिलता है. उसे दिवाकर के पूरे व्यक्तित्व से रश्क हो आया. वह उसे अनाम किस्म की निजी खासियत का ही एक हिस्सा लगा, वह हिस्सा जो वक्त ने उसे नहीं पाने दिया. लेकिन उसने कहा, "मुझे लगता है कि आज तुम अपने को पूर्णतः निराश और असफल महसूस कर रहे हो."

दरसअल इस तरह से वह अपने को मजबूत करना चाह रहा था. एक पल को उसने सोचा, अपने पुराने दोस्त के साथ बेरुखी का बरताव न करे. मगर उसने इस विचार की धज्जियां बिखेर दीं. दोस्त के नाम पर पहले भी उसके सामने एक फिजूल-सी अस्पष्टता पसर जाती थी. यह तब की बात है जब वह स्कूल में पढ़ा करता था. तब भी वह बहुत कमजोर दिमाग का आदमी था मगर अति भावुक होने के कारण वह घर में पनपती बदबू भरी जिंदगी को महसूस कर रुआंसा हो जाया करता था. उसके शरीर के पोर-पोर में आंसू बहा करते थे. अधिक घुटन हो जाने पर वह अपने में घुसकर फूट-फूटकर रोया करता था और अपने नुकीले दांतों से मुलायम होंठों को अकसर कुतर दिया करता था. अधिकतर वह अपने घुटे से कमरे में सीले हुए बिस्तर पर पड़ा रहा करता था. गुमसुम. ठहरी हुई आंखें लिये, खिड़की से धुंधले क्षितिज को घूरता हुआ, कुछ तलाशता हुआ. लेकिन मिलती थी शायद बाजुओं से साफ निकल जाने वाली, हल्के-फुल्के बादलों-सी अनुभूति. जो उसके दिमाग के सब कुछ को गड़बड़ा देती थी. जब यह प्रक्रिया उसे एकदम थका देती थी तो वह पंडित चायवाले की ओर निकल जाया करता था. उस धुआं भरे माहौल में कुछ देर ही बैठ पाता कि वहां भी उसे उकताहट-सी होने लगती. कुरते के ऊपर मंडराते उस अस्थिरता के पिस्सू से वह परेशान-सा हो जाता तो अपने एकमात्र आश्रय स्थल, घर में ही घुस पड़ता. घर उसके मन में अपना घर वैसी ही अनुभूति जगाता जैसा चिथड़े-नुमा भिखारी. जिस घर की घिसी हुई काली-कलूटी दीवारें उसे पूरा अपनापन देती थीं. अक्सर उसे लगता था कि सड़ी-गली, पुरानेपन से लिथड़ी हुई चीजों से उसे बहुत प्यार होता जा रहा है, जो मूक रहकर उसे अपने में एकात्म हो जाने का निमंत्रण देती लगतीं. उसमें भयप्रद सिहरन-सी भरने लगती जब यदा-कदा उसे यह सोचने का मौका मिलता कि वह किसी अनुपयोगी घृणास्पद वस्तु में ढलता जा रहा है. इस हैरतनाक नियति की कल्पना से उसके अंदर गुस्से का धुआं उमड़ने लगता और उसके कुछेक छोटे भाई-बहनों को दबोच बैठता, जिनका आश्रयस्थल उसके अकेले कमरे की तरह भुसभुसी कलियाई दीवारों वाला रसोईघर होता जिसमें होते मैले जाले और जमा हुआ धुआं.

उन पर बरस चुकने के बाद उनकी आंखों में उसे एक भयातुर रेगिस्तान फैलता हुआ नजर आता. तपता हुआ और चेतना को विनष्ट कर देने वाला अकेलेपन का रेगिस्तान. धीरे-धीरे तब उसके अंदर सब कुछ बहने लगता. वह विसंगतियों की भयानकता से घबराकर अपनी अंधी कोठरी में घुस पड़ता. अंदर उसकी हालत बड़ी दयनीय हो जाती. कोठरी की कालिख चारों ओर से उसकी हड्डियों को दबोचने चली आती. वह हांफने लगता. दिल की धड़कन थक-टूटकर लंगड़ाई पर पहुंच जाती. तो उसे वही रात याद आने लगती. हालांकि उस एक रात के साथ, अपने से टूटकर एक खास किस्म के वक्त का टुकड़ा भी था जो जले हुए रबड़ की तरह उससे चिमटता हुआ सिर्फ उसे भागते रहने पर ही मजबूर रखता. उस रात वह नींद में था.

यूं नींद में भी कुछ गिने-चुने जकड़न भरे शब्द उसके दिमाग की अंधी दीवारों से टकराकर उसके दिमाग को सक्रिय किये रखते थे, पर वह चीखते हुए शब्द उसके शारीरिक दायरे से बाहर के थे. वह आंख खुलते ही एकदम चुस्त हो गया था. उसमें यह एक खासियत थी, थका हुआ होने पर भी किसी असंभावित वजह से जाग उठता तो उसकी चेतना बिजली के करंट की तरह चारों ओर गश्त लगाना शुरू कर देती. सुप्तावस्था में वह अक्सर खतरों को घड़ी की टिक-टिक की तरह बजता सुनता था.

आंख खुली थी तो उसके कान कोठरी की तख्तों की छत से टकराये थे जो जित्ता नाई का फर्श थी. जित्ता नाई अपनी सुपरिचित आवाज में खांस रहा था. उसकी खांसी की आवाज को काटती हुई शायद किसी कार की रपटती हुई आवाज गुजर गयी थी सड़क से. फिर एक तमाचे की आवाज दिमागी कुएं में चमगादड़ के डैने फड़फड़ाकर उड़ गयी थी. बदहवास-सा वह दरवाजे का कुंडा पकड़े खड़ा था. लात घूंसों-चीखों और कच्चे फर्श की धमधमाहट ने उसे बेचैन कर दिया था. एक ही घटना का दोहराव था वह. पिता अश्लील बौखलाये हुए शब्दों में गालियां दिये जा रहे थे मां के ढले मांस के लथोड़े को. मां और पिता का संबंध जैसे कोई मांसभक्षी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कब्रिस्तान के किसी अंधेरे कोने में मुर्दे के सड़े-गले मांस को जीभ चटखारते हुए खा रहा हो.

उसका हांफता हुआ आवेश उसकी मुट्ठियों से उतर आया था. उसने चाहा था वह अपनी मजबूत मुट्ठियों से पिता को लहूलुहान कर दे. मगर उसकी उंगलियां निर्जीव होकर लटक गयी थीं. वह नौकरी से बर्खास्त पिता के आंतरिक दुख से कहीं बहुत ज्यादा जुड़ा था. उसकी मानसिक जड़ता का एहसास वहीं कर सकता था.

वह दरवाजे की झिर्री से लगा खड़ा था, स्थितियों की अनगढ़ता पर यंत्रणा झेलता हुआ. दरवाजे के झटके से खुलने पर उसका सिर दीवार से जा भन्नाया था. दीये की पीली रोशनी में उसने मां को एक क्षण देखा था. बाल बिखरे हुए, कपड़े फटे हुए, चेहरे पर प्रौढ़ावस्था में जन्मी बुढ़ायी झुर्रियां. मां तेजी से बिना पल्लों की चौखट को पार कर गयी थी. शेष रह गया था हिलता हुआ टाट का फटा हुआ पर्दा, स्थिर होने की कोशिश में. भाई-बहिन पेशाब की बदबू फेंकते गदेलों पर निर्जीव पड़े थे. थके से खाट पर बैठकर पिता बोले थे, "जा, ले आ!" आंख चुराते हुए.

वह बाहर आ गया था. गंदे नाले की पुलिया पर अंधेरे में मां बैठी थी. वह भावावेश में लिपट गया था उससे. तभी उसके चेहरे पर दर्द की जलती हुई लकीरें खिंच गयी थीं. मां ने नाखूनों वाला पंजा वापस खींच लिया था. वह पीछे हट गया था. उसे लगा था जैसे वह एक क्षण के लिए मर चुका है. रात की खामोशी में सुन्न कानों को लिये वह हैरान था. फिर घर वापस आ गया था.

कुछ दिन बाद मां उसे सिनेमा रोड पर घूमती दिखाई दी थी. फटे हुए कपड़ों से उसका जिस्म झांक रहा था. उसके कान गर्म हो गये थे. पुलिस कांस्टेबिल उसे उंगली के इशारे से छतरी के नीचे बुला रहा था और वह प्रत्युत्तर में उसे गालियां दे रही थी. ठीक सामने आसमान पर चिलचिलता सूर्य उसकी आंखों में भर गया था. उसने पूरे शरीर में धुंधलापन महसूस किया था. वह मां की निर्दोष भटकन को सह नहीं पाया था. उसका मन किया था, मां के अधनंगे शरीर से जाकर लिपट जाये. मगर उसके चेहरे पर उस रात की जलती लकीरें खिंच गयी थीं. तेजी से भागते ट्रैफिक के बीच वह अनिच्छित थकान से ट्रैफिक पुलिसमैन के चौंतरे की ओर बढ़ गया था. चौंतरे पर बैठी मां अपेक्षाकृत अब शांत थी. और स्नेह से कांस्टेबिल का हाथ देख रही थी. उसने देखा था, कांस्टेबिल ने एक हाथ मां की कमीज पर रख दिया था. कांस्टेबिल का निचला मोटा होंठ दांतों में भिंचा हुआ था. आंखों में चमक तैर रही थी. पर तभी मां ने अजीब-सा प्रलाप शुरू कर दिया था तो उसे लगा था वह उसकी कायरता, उसकी नपुंसकता का ही बखान कर रही है. उसने तंग आकर हल्ला बोल देना चाहा था उन सब गलत स्थितियों पर, पर हाथ-पैर हिलाने पर उसे अनुभव हुआ था कि किन्हीं अज्ञात जंजीरों से जकड़ा हुआ है. उसके दिमाग की सुन्नता विस्तरित होने लगी थी. भयातुर वह घर की ओर भाग

"पूरे वातावरण में बारूदी गंध-सी व्याप्त थी, उसने देखा कि हजारों युवकों का सैलाब उमड़ा पड़ रहा है. बंद बाजार के लंबे फुटपाथ पर पुलिस रेंग रही थी कंधों पर बंदूकें, हाथों में लाठियों और ढालें लिये"

लिया था. अंदर से थपाथप कपड़े पीटने की आवाज आ रही थी. पिता अपने कपड़े धो रहे थे. अंदर की गंदी बंडी से उनकी हड्डियां बाहर दिख पड़ रही थीं. उसे देखकर थोड़ी देर को उनकी धपाधप रुक गयी थी. पिता ने चुंधियायी आंखों से देखते हुए कहा था, "क्यों, रो क्यों रहा है?" उसने दीवार की ओर देखते हुए अपनी आंखों को छुआ था. कहीं भी तो नहीं. वह अनभिज्ञ था. रोता चेहरा है न कि आंखें. पिता अपने क्रम में कपड़े धोने लग गये थे. उसकी इच्छा हुई वह उनसे मां का जिक्र करे. पर उनके ठंडेपन को देखकर भारी सर लिये कोठरी में घुस गया था. उसके सर पर हवा सांय-सांय कर रही थी. धीरे-धीरे उसे नींद आ गयी थी. कुछ देर बाद आंखें खुलने पर उसने दिवाकर को कहते पाया था, "अजीब चुगद है यार तू भी! आज का प्रोग्राम नहीं था जुलूस में चलने का!"

उसने बुझी हुई आंखों से दिवाकर को देखा था. आधी बाजू से झांकती हाथों की स्वस्थ मछलियां स्वच्छंदता से तैर रही थीं. वह शायद फिर से ढीला होकर बिस्तर पर फिसल जाता लेकिन दिवाकर ने मजबूती से उसे खड़ा कर दिया था. वह विरक्ति से तना जा रहा था. कैसा जुलूस? आखिर क्यों? मगर निढाल-सा वह पसीने से चिपचिपाती बनियान पर कमीज डालकर उसके साथ बाहर आ गया था.

शहर के चौराहे पर पहुंचकर वह स्तब्ध रह गया था. पूरे वातावरण में बारूदी गंध-सी जैसे व्याप्त थी. उसने देखा था, हजारों युवकों का सैलाब उमड़ा पड़ रहा है. बंद बाजार के लंबे चले गये फुटपाथ पर पुलिस रेंग रही है. कंधों पर बंदूकें, हाथों में लाठियां और बेंत की ढालें लिये. उसे वह एकदम विशाल और ऐतिहासिक निर्णय का क्षण लगा था. चिंघाड़ती हुई स्थिति देखकर वह घबड़ा गया था. वापिस हो लेने के लिए मुड़ने लगा था तो दिवाकर ने उसकी कलाई मजबूती से दबोच ली थी. दिवाकर की आंखें सिकुड़-कर पैनी हुई जा रही थीं. उसने उसके हवाइयां उड़ते चेहरे के पास मुंह लाकर कहा था, "तुम्हें सामना करना ही होगा मुन्ने! इससे बचकर नहीं जा सकते!"

अपने नेता की प्रतीक्षा में भीड़ कर्णकटु हुई जा रही थी. दिवाकर ने उसे चबूतरे पर खींच ले जाकर हाथ उठाकर हिलाना शुरू कर दिया था. कोलाहल शांत होने पर उसने कुछ इस तरह की बातें कही थीं—देश में फैले भ्रष्टाचार, आम आदमी के नारकीय जीवन की बातें. शासकीय अजगरों के दांत तोड़ देने की बातें. लालफीताशाही के पोषक अमान-


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीय अधिकारियों को भून देने की बातें. मगर वह इनसे अछूता कांपता खड़ा था, जैसे सर्दी खा गया हो. वह व्यस्थित रूप में कुछ नहीं सोच पा रहा था. अकस्मात उसने देखा था कि भीड़ चारों ओर छिटक पड़ी है. भीषण पथराव शुरू हो गया है. बैंक, सिनेमा और दूकानों के छनछनाते कांच के टुकड़े उसे शिद्दत से चुभते चले जा रहे हैं.

और अंदर से घायल कोई फुसफुसाहते हुए याचना कर रहा है—'तुम मेरे अंतर को छेद दो मगर ये बाहरी उथल-पुथल खत्म कर दो. मैं तुम्हारे छिद्रों में समा जाने को तैयार हूं.' तभी आकस्मिक दबाव से वह ठुड्डी के बल नीचे गिर पड़ा था तो उसके हाथ एक लाठी लग गयी थी. दूसरे वार में पुलिस वाले ने उसकी कमर की सिकायी कर दी थी. तैश में आकर उसने लाठी उठाने की कोशिश की थी लेकिन हाथ अशक्त हो चुके थे.

पुलिसवाले ने ठोकर मारकर कहा था, "मादर...! बहुत बदमाश समझता है अपने को! मां की. . .में घुस जा हरामी के." उसने डबडबायी आंखों से देखा था, दिवाकर किसी से बंदूक छीनकर आग उगल रहा था. फिर वह धुंधला पड़ गया था. एक क्षण बाद एक गहरा प्रहार और हुआ था उसकी रीढ़ पर. यह उसकी सहनशक्ति की सीमा थी. वह अपनी नपुंसकता पर खीझ उठा था. लेकिन तब भी कुछ नहीं हो पाया. दिपदिपाती आंखों से सिपाही को देखकर वह घुटनों के बल आगे खिसक लिया था. गाड़ी के नीचे पिचके कुत्ते के पिल्ले के घिसटने-सा. रेंग-रेंगकर वह गंदे पानी के गटर में घुस गया था और अचेत हो गया था. होश आने पर उसे सड़क पर कुछ लाशें पड़ी दिखाई दीं थीं, कई तरह के कपड़ों में ढकी. धूप ढल चुकी थी, वातावरण शांत हो चुका था. वह सिहरता हुआ पंडित के यहां पहुंच गया था. कई जगह से रिसता हुआ खून लिये. दागीले कपड़ों में.

दिवाकर अंधेरा होने के बाद वहां पहुंचा था. फैली हुई आंखों से बोला था, "वाह गुरु, बहुत कुछ कर आया लगता है आज! कितने पुलिस वालों की कड़ियां ढीली की हैं—छोड़ भी यार, जैसे तू वहां था ही नहीं." कहकर अपनी मिच-मिचायी आंखों को खूब कसकर मला था. बारीक-सा कीचड़ उंगली पर उतर आया था. बोलने से उसके होंठों पर सूखे खून की बारीक पपड़ियां तड़क आयी थीं. वह ठीक से आश्वस्त हो जाना चाहता था कि दिवाकर उसकी वह गलीज हालत वहां नहीं देख पाया. भ्रम को पक्का रंग देने के लिए उसने होंठों को थोड़ा फैल जाने दिया था. दिवाकर शायद उसकी समझ से आश्वस्त-सा होकर कुर्सी पर पसर गया था. अंदर ही अंदर ठंडापन महसूस कर उसने बताया था कि किस प्रकार दो-तीन पुलिस वालों को एक-एक करके वह गंदे पानी के गटर में खींचकर ले गया था और भारी पत्थर से उनके चेहरों को पीसकर रख दिया था. दिवाकर का ध्यान उसकी तरफ न होकर कहीं और था. कहीं दूर या सिर्फ लकड़ी की दीवार पर. या फिर उसके कोरे झूठ की धुरी पर किसी चीज की तलाश में. तत्काल कोई गोल-सी चीज उसे अपने गले से ऊपर आती लगी थी. उसकी इच्छा हुई थी उसके सामने से सब कुछ अदृश्य हो जाये और उसकी सांस यथापूर्व चल सके. मगर घबराकर उसकी नजर मेज पर बैठे चाय के कपों पर पड़ी थी. चाय पर हल्की पपड़ी उभर आयी थी. उसने सावधानी से एक घूंट भर लिया था. वह ठोस गोली फिर नीचे पेट में बैठ गयी थी.

दिवाकर और चाय, दोनों को देखकर उसने कहा था, "चाय!" दिवाकर के अपने पर ठहरे चेहरे को देखकर वह गोली फिर उभरने लगी थी. दिवाकर ने चाय का एक लंबा घूंट भरकर उससे कहा था, "इस शहर में अब कोई संभावना नहीं दीखती."

"तो, क्या!" उसे कुछ समझ नहीं आया था.

"तो ये मुन्ना, मैं आज ही अपनी नयी यात्रा शुरू कर रहा हूं. मुझे अभी लड़ना है." उसने उस सुबह के जुलूस की तरह मजबूती से उसकी कलाई पकड़कर कहा था, "तुझे भी मेरा साथ देना है." एक ठंडी लकीर उसकी रीढ़ से होकर नीचे बह गयी थी. लड़ाई, हां लड़ाई! उससे लड़ना है. लड़ना है उस चीज से जो स्पष्ट नहीं है, तनिक भी. यह दिवाकर किस लड़ाई की बात कर रहा है. उसने अपना हाथ दिवाकर से छुड़ा लिया था और किसी अंधी दिशा की ओर बढ़ गया था. दिवाकर उसकी पीठ पर थूककर चला गया था. किसी नये क्षितिज की ओर.

उसके जाने के बाद उसकी अंधेरे से लड़ाई शुरू हो गयी थी. उसने देखा था वह किसी कालिख हुई गुफा में पड़ा हुआ है. मुंह पर एक चौड़ा भारी पत्थर उसे कैद करता जा रहा है. बची-खुची रोशनी की किरन भी चली गयी है. अंदर अंधेरे के जंगल उगते चले जा रहे हैं. सैकड़ों की तादाद में अंधेरे में पले जानवर अपने मुंह लिये उसकी ओर बढ़े आ रहे हैं. एक टकराव के धमाके से उसकी चेतना गुम हो गयी है. तब उसने देखा था, गुफा की दीवारों पर उगती काई लगी गिजगिजाहट उसे ढक देने की फिराक में है. और वह रोती हुई चिल्लाहट में नोच-नोचकर दूर फेंक रहा है, गिजगिजाहट के उस घिनौने एहसास को. धीरे-धीरे उसकी नाक में दुर्गंध समाने लगी है. सड़े घावों में कीड़े रेंगने लगे हैं. वह पूर्णतः टूटकर अपने अंत तक पहुंच जा रहा है. मगर कुछ गुनगुनाहटें तीखे नारों की शक्ल अख्तियार कर फिर फिर उसे रास्ते में ही रोक लेती हैं. और उनके दबाव से वह सड़क पर बिखरे कांचों, झंडों और लाठियों के बीच उछलकर गिर पड़ता है. □

● सी. टी.-41, यमुना कालोनी, देहरादून-248001

## चलते-चलते

चिड़ियाघर में दो बंदर आपस में बात कर रहे थे. एक ने कहा, "जानते हो ये आदमी हमारे पूर्वजों की संतान है?"

"क्या. . . ?इसका मतलब जो ये नेता लोग हैं ये भी. . . ये तो हमारा सरासर अपमान है." दूसरा बोला. □

—जितेंद्र चौहान



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कालोनी में रहना

▫ मुज्तबा हुसैन

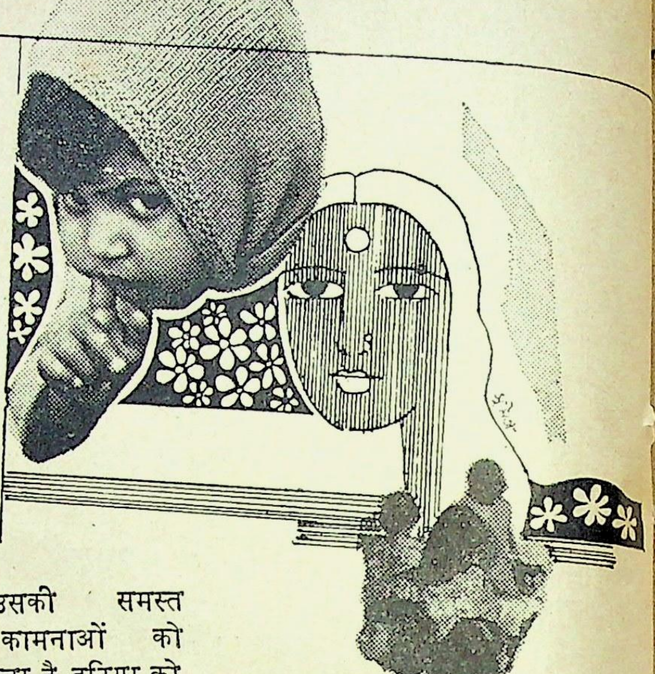

एक जमाना था जब हमारा मुल्क बरतानिया की एक कॉलोनी था और आज इस मुल्क में कई कॉलोनियां आबाद हो गयी हैं. यह और बात है कि इन कॉलोनियों को हाउसिंग कॉलोनियां कहा जाता है. कॉलोनी चाहे ब्रिटेन की हो या हाउसिंग की, दोनों का उद्देश्य जनता को तकलीफ पहुंचाना होता है.

कॉलोनी जमीन के उस टुकड़े का कहते हैं जहां बहुत से लोग इकट्ठा होकर अजनबियों की तरह जिंदगी गुजारते हैं. इस जीवन-प्रणाली को दर्शन की भाषा में 'भीड़ का एकाकीपन' कहा जाता है.

जब तक आदमी ने हाउसिंग कॉलोनियां ईजाद नहीं की थीं तब तक वह अपने पांव की लंबाई के अनुसार चादर की लंबाई रखता था. मगर अब वह चादर की लंबाई को देखकर अपने पांव की काट-छांट कर लेता है. ऐसा न किया जाए तो कॉलोनी में रहना मुश्किल हो जाए. मिसाल के तौर पर तीन बच्चों के बाद हमने चौथा बच्चा महज इसलिए पैदा नहीं किया कि हम एक हाउसिंग कॉलोनी के सिंगिल-रूम क्वार्टर में रहते हैं.

सिंगिल-रूम क्वार्टर उसे कहते हैं जिसमें दस फुट गुणा दस फुट के एक कमरे में एक परिवार की कुल गति-विधियों और उसकी समस्त इच्छाओं और कामनाओं को समेटकर रख दिया जाता है. दरिया को कूजे में बंद करने का एक लाभ यह होता है कि बच्चों और उनके मां-बाप के बीच काफी बिरादराना और दोस्ताना ताल्लुकात पैदा हो जाते हैं.

अंग्रेजी शब्दकोश में एक शब्द 'प्राइवेसी' का पाया जाता है. हमें इस शब्द का भविष्य काफी निराशाजनक नजर आता है. हमें अंदेशा है कि अगर हाउसिंग कॉलोनियां इस तरह दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करती रहीं तो यह शब्द डिक्शनरी से एकदम गायब हो जाएगा. अब भी हमें अपने बच्चों को इस शब्द के मानी समझाने में बड़ी कठिनाई पेश आती है. वे अक्सर हमसे पूछते हैं, "डैडी, यह बताओ, प्राइवेसी कहां पाई जाती है?" और इस सवाल के जवाब में हम सिर्फ अपनी बीवी को सवालिया नजरों से घूरते रह जाते हैं. यह वजह है कि सिंगिल-रूम क्वार्टर में रहने वाले परिवारों के बच्चे अपनी उम्र से बहुत पहले जवान हो जाते हैं और उसी रफ्तार से बहुत पहले बूढ़े भी हो जाते हैं. कम से कम वक्त में ज्यादा जिंदा रहना इसी को कहते हैं.

हमारी कॉलोनी-जदा औलाद का यह हाल है कि जब कभी हममें और हमारी बीवी में किसी बात पर झगड़ा होता है तो वे न सिर्फ हम दोनों को एक अच्छी गृहस्थ जिंदगी के राज से वाकिफ कराते हैं बल्कि बाज मौकों पर तो 'रैफरी' की ड्यूटी अंजाम देते हुए हम दोनों की हार-जीत का फैसला भी घोषित कर देते हैं. इसी सिंगिल-रूम क्वार्टर की जिंदगी का नतीजा है कि अब जब भी हम और हमारी बीवी किसी बात पर झगड़ा करना चाहते हैं तो चुपचाप घर से निकल कर किसी पार्क में चले जाते हैं और जी खोलकर लड़ाई करने के बाद घर वापस होते हैं. मगर अब इसका पता हमारे दोस्तों को चल गया है.

एक कमरे की जिंदगी गुजारते-गुजारते आदमी की दिमागी हालत भी एक कमरे की हो जाती है. वह इतना तंग-नजर हो जाता है कि उसे सारी दुनिया दस फुट गुणा दस फुट की मालूम होने लगती है. खुदा झूठ न बुलवाए, जब भी हम किसी खुले और बड़े घर में चले जाते हैं तो न जाने क्यों हमारा दम घुटने लगता है. यों महसूस होता है जैसे अभी हमारा सांस रुक जाएगा. यही नहीं बल्कि हमारी आदतें भी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कमरे की हो जाती हैं.

मगर साहब, कॉलोनी की जिंदगी एक बिल्कुल ही अलग दुनिया है. यहां के प्राकृतिक नियम बिल्कुल अलग-थलग हैं. यहां का सूरज अलग है, यहां का चांद अलग है और मौसम भी अलग है. मसलन हमारी कॉलोनी का सूरज उस वक्त तक नहीं निकलता जब तक कि हमारे पड़ोसी मिश्रा जी की खांसी किसी वार्निंग के बगैर अचानक शुरू नहीं हो जाती. हमारे बच्चों का खयाल है कि सूरज मिश्रा जी के हलक में से उदित होता है.

थोड़ी देर बाद जब अचानक सांप के फुफकारने और फिर सांप के मारने की आवाजें आने लगती हैं तो हमें एहसास होता है कि सात बज गये हैं और हमारे दूसरे पड़ोसी के घर में नल खुल गया है और उनकी नौकरानी लक्ष्मी न सिर्फ आ चुकी है बल्कि कपड़े भी धोने लग गयी है. चलिए साहब, इस तरह कॉलोनी के सात बज गये. लेकिन हमें आठ बजने से हमेशा बड़ा डर लगता है क्योंकि ठीक आठ बजते ही हमारे एक और पड़ोसी वर्मा जी की बीवी अपने इकलौते बच्चे को जोरदार तमाचा रसीद कर देती हैं. इस तमाचे का मतलब यह होता है कि उनका मुन्ना अब स्कूल जाएगा. तमाचा ठीक आठ बजे लगता है

तमाचा, आठ बजे और स्कूल—इन तीनों का कुछ ऐसा रिश्ता बंध गया है कि एक दिन मुन्ने की मां ने आठ बजे मुन्ने को तमाचा रसीद नहीं किया तो उसने मां से इसकी शिकायत की.

और यह देखिए, अब दरवाजे पर दस्तक होने लगी है. इसका मतलब यह है कि सवा आठ बज गये हैं और लाला जी का टूथ-ब्रश दरवाजे पर आ गया है. अब हमारे टूथ-पेस्ट को दरवाजे तक जाना होगा. लाला जी निचली मंजिल पर रहते हैं और हम चौथी मंजिल पर. कई महीनों से यह नियम-सा बन गया है कि ठीक सवा आठ बजे लाला जी अपना टूथ-ब्रश हमारे पास भेज देते हैं. हमारा फर्ज यह होता है कि हम उस टूथ-ब्रश पर टूथ-पेस्ट डाल दें. एक बार संयोग से हमारे पास टूथ-पेस्ट खत्म हो गया. लाला जी का टूथ-ब्रश जब हमारे पास आया तो हमने कहलवा भेजा कि आज इत्तिफाक से हमारे पास भी टूथ-पेस्ट नहीं है. इसके साथ ही हमने अपने बच्चे को बाजार भिजवाया कि वह जाकर टूथ-पेस्ट ले आये. कोई आधे घंटे बाद जब वह बाजार से टूथ-पेस्ट खरीदकर घर में पहुंचा तो हमने देखा कि टूथ-पेस्ट के ट्यूब की हालत खराब है. यों लगा जैसे उसे पहले ही से किसी ने खोल लिया हो.

दुनिया में सब कुछ हो सकता है लेकिन कॉलोनी की दिनचर्या में कोई फर्क नहीं आ सकता. दस बजते ही वह नज्जारा देखने योग्य होता है जब बाबू लोग अपने-अपने घरों से निकलकर नीचे सड़क पर आ जाते हैं और उनकी बीवियां बालकनियों की रेलिंग से उल्टी लटकी हुई चारपाइयों की ओट में से मुस्करा-मुस्कराकर अपने-अपने शोहरों को विदा करने लगती हैं. दिन भर में यही तो वह मौका होता है जब कॉलोनी की औरतों के चेहरों पर मुस्कराहट होती है. विभिन्न मंजिलों में रहने वाली मोनालिजाएं मिलकर जब अपने-अपने शोहरों को विदा करने लगती हैं तो यह पता चलाना मुश्किल हो जाता है कि कौन-सी मोनालिजा किसको विदा कर रही है.

इसके बाद कॉलोनी में एक अजीब-सा सन्नाटा छा जाता है. कभी-कभी किसी फेरी वाले की आवाज सुनाई देती है—"खाली बोतलें! खाली डिब्बे!" ऐसे मौकों पर फेरीवाले की मासूमियत पर हंसी आ जाती है. उसे क्या पता कि इस कॉलोनी की खाली बोतलें तो कब की दफ्तर जा चुकीं. अब तो सिर्फ उन बोतलों के लेबल घर में रह गयी हैं.

कॉलोनी का दिन यों ही भाएं-भाएं करता गुजर जाता है. जब शाम के पांच बजने लगते हैं तो कॉलोनी में फिर से जिंदगी की लहर दौड़ जाती है.

यही वह मौका होता है जब कॉलोनी के निवासियों का सामाजिक जीवन शुरू होता है. बस-स्टॉप से घर वापस होते हुए आपकी मुलाकात सबसे हो जाएगी. मगर यह मुलाकात बड़ी नपी-तुली होती है. लाला जी पिछले दस बरसों से रास्ते में मिल रहे हैं. इन दस बरसों में उन्होंने हमसे सिर्फ एक ही सवाल पूछा और वह यह कि—"आपके मिजाज कैसे हैं?" और बाज-वक्त हमारी तबीयत खराब होने के बावजूद हमने हमेशा इस सवाल का जवाब यह दिया कि—"बिल्कुल अच्छा हूं!" खालिद साहब से कॉलोनी वापस होने वाली बस में प्रायः हर रोज मुलाकात हो जाती है. उनकी खूबी यह है कि वह हर रोज एक नयी बीमारी के शिकार हो जाते हैं और कॉलोनी वापस पहुंचने तक इस बीमारी की विशेषताएं पूरी तफ़सील के साथ हमें बता देते हैं. एक और साहब हैं जो हर रोज हमसे यह पूछते हैं कि—"आपके बच्चे कौन-सी क्लासों में पढ़ रहे हैं?"

कॉलोनी की रात आनंददायक होती है. हम बड़ी देर तक अपने पड़ोसी वर्मा जी का रेडियो सुनते हैं. रेडियो प्रोग्राम अच्छा न हो तो खिड़की में पहुंचकर खड़े हो जाते हैं और पैंतालीस अंश का कोण बनाकर मुकर्जी साहब के घर में चल रहे टेलीविजन प्रोग्राम को देखते हैं. रात में दस बजे लाला जी की बीवी अपने बच्चों को आखिरी वार्निंग देती हैं कि—"मैं सात बजे से तुम लोगों को सोने को कह रही हूं और तुम बदस्तूर शोर मचा रहे हो."

फिर रात आहिस्ता-आहिस्ता कॉलोनी पर उतरने लगती है और लोग अपने-अपने पांव समेटकर सो जाते हैं. मगर सोने से पहले उनकी अंतिम कामना यह होती है कि खुदा मिश्रा जी को सही-सलामत रखे और वह सुबह उठकर अपनी विशिष्ट खांसी से सूर्योदय करें. कभी-कभी यह खौफ भी होता है कि कहीं मिश्रा जी की खांसी रुक गयी तो हम सबका क्या होगा, उस सूरज का क्या होगा जो उनकी खांसी की आवाज सुनकर क्षितिज से अपना मुंह बाहर निकालता है. □

**अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र उसका, उत्तर पत्नी को, और वह यह कि शिविर छोड़ने की अनुमति नहीं है, —इतने से रंजना बहुत कुछ समझ गयी. समझ गयी, क्या बीत रहा हो सकता है मानिक सेठ के मन में कि उसमें एकदम शांति की मांग हो आयी. क्यों और क्या अशांति अपने भीतर पैदा कर ली होगी उसने इस संबंध में, उसमें संशय नहीं रह गया. उसे विस्मय होता है कि लोग उस प्रेम को स्वीकार करने में संकोच करते हैं जो ईश्वर का ऐश्वर्य है. सारी परस्परता को क्या एक वही तत्व नहीं थामे है? उसका इंकार ही क्या जगत व्यवहार को संकटापन्न नहीं बना दे रहा है? क्या वही आदमी की, समाज की और राष्ट्र की समस्याओं का मूल नहीं है?

यह भाव, निःशब्द क्षण में होकर उस क्षण में ही उसके भीतर से गुजर गया. उसने मधु को देखा और समझ गयी कि वह समझ गयी है. मधु को अपने पति से आशा न थी कि वह कोई अपराधबोध अपने में पाल लेकर, हठात किसी की शरण लेंगे और वहां से शांति पा जाने का भरोसा रखेंगे. वह मानती थी कि सफलता ने उनके अंतःकरण को काफी मजबूत बना दिया है और जो औरों को विचलित कर सकते हैं, वैसे सामान्य स्खलन हमारे सेठ आसानी से झेल ले जा सकते हैं. नारी आकर्षण उनके लिए नयी चीज नहीं है. रंजना की ओर से तो स्थिति उत्पन्न हो ही नहीं सकती जिससे वह या कोई चोट खा जाये. फिर क्या आघात हो सकता है कि वह टूटे और मन की स्थिरता वापस पाने यहां-वहां छाया ढूंढ़ने निकले. तो क्या रंजना की स्वच्छ स्वीकारता ने ही कहीं उन्हें भीतर से दहला दिया है!

पर रंजना और मधुरिमा में मुखर एक शब्द का भी आदान-प्रदान नहीं हुआ. कारण यह भी कि पारमिता उनके बीच भी और उस व्यक्तित्व की उपस्थिति में एक प्रकार की अमोघता थी.

रंजना पम्मी के कमनीय रूप को देखती रह गयी थी. उस कमनीयता में एक कांति थी, जो चुनौती देती थी. अग्निशिखा-सी तेजस्विनी वह युवती, एकाग्र और मौन उसे बहुत ही मनमोहक लगी. कुछ स्फुरित हो रहा था उसमें से जो छुए बिना न रहता था. उसके मुंह से जिस तरह 'गांधीवाद' शब्द निकला था, साथ उसका चेहरा ही नहीं वरन संपूर्ण शरीर मानों कड़वा हो आया था. यह रंजना को बेहद प्रभावित छोड़ गया था. अन्याय और अत्याचार से लड़ने में जो सब तरह के खतरे ले सकती है, उसके सामने सुझाव रखना कि वह सत्ता के आगे समर्पण कर दे, घोर अपमान ही तो है. यह संकेत सत्य और अहिंसा के नाम पर आया हो सकता है पर दर्पोद्धत सत्तामद के समक्ष घुटने टेकना और इस प्रकार अन्यायी के मार्ग को और प्रशस्त कर देने में भला कौन-सी धर्मनीति हो सकती है! यह सब बिना कहे कहती हुई ऊर्जस्व दृढ़ता के सशरीर उदाहरण को सामने पाकर रंजना को आनंद अनुभव हुआ था.

उसने कहा, "मैं माफी चाहती हूं. पर अच्छा नहीं लगता पारमिता कि तुम्हें डरना पड़ जाये. मैं तुमसे दस बरस से भी शायद बड़ी हूं, इसलिए मेरे कहने का बुरा न मानना."

पारमिता ने ऊपर देखा, अभी तक नीचे जाने किस शून्य में उसकी आंखें गड़ी थीं. बोली, "नहीं, बुरा क्यों मानूंगी? यही न कि मैं डरती हूं! . . .चलिए, डरती हूं. फिर?"

"भला नहीं लगता, तुम जैसी के साथ डर का होना!"

"हो सकता है. पर आप लोग पाप से डरती हैं. क्यों, नहीं डरतीं? दीदी तो उस चीज से बहुत ही डरती हैं. तो सुनिए, मैं पाप से नहीं डरती, जिससे डरना सबको सिखाया जाता है. उसी सीख ने दबा रखा है सबको और उबार रखा है उसको जो अत्याचारी बना हमारे सबके सिर पे आसन जमाये बैठा है. आपका, माफ कीजियेगा, और हमारी पूजनीय दीदी

# दशार्क

## • जैनेंद्र कुमार

**धारावाही उपन्यास : समापन किस्त**

आप पढ़ चुके हैं कि . . .

**बड़े घर की एक लड़की साधारण घर के एक यूनिवर्सिटी टॉप लड़के की पत्नी बनी. सात बरस बीत गये. परिस्थितियां बिगड़ीं, उसने पत्नीत्व के अधिकार से वंचित कर दिया. पत्नी का अंत हुआ और एक नव रमणी का आविर्भाव, देह व्यापार करने वाली एक संवेदनशील मानुषी. देह को वह मूलधन मानती है और इसे खर्च करने में विश्वास नहीं करती. दरवाजे पर बोर्ड 'कन्सलटेंट' का लगा है. पुरुषों से मिलने की फीस हजार रुपये लेती है. विभिन्न प्रकार के लोग उसके पास आते हैं और उसके जीवन दर्शन के कायल होकर लौटते हैं.**

**सेठ मानेक लाल तथा उसकी पत्नी माधुरी रंजना के आत्मीय लोगों में हैं. रंजना इधर अंतरराष्ट्रीय अखबारों में जगह पाने लगी है और यह बात उसे पसंद नहीं है. इसका कारण उसका एक फ्रांसीसी मित्र था. इसीलिए उसने एकांतवास तय कर लिया. फिर भी माधुरी उसे अपने घर बुलवा लायी, पारमिता से मिलवाने के लिए.**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी का सुख-आराम इसीलिए न निष्कंटक है कि राजा के सिंहासन पर वह दुर्दांत विराजमान है, जिसने फैला रखा है यह वहम कि उठना पाप है, सहते जाना पुण्य है. आप चाहती हैं कि मैं पाप से डरूं और घर-गिरस्ती बसाकर आप जैसी इज्जतदार जिंदगी बिताऊं!"

रंजना ने हंसकर कहा, "मेरी बात छोड़ो, लेकिन तुम चाहोगी कि अपनी दीदी का सुख-आराम उजाड़ डालो." सुनकर पारमिता रंजना को भौंचक-सी देखती रह गयी.

"तुम्हारी वजह से क्या इन पर आंच नहीं आ सकती?"

मधुरिमा बीच में टोककर बोली, "तुम्हें मेरी फिक्र रखने को किसने कहा है रंजना?"

पारमिता ने मानो निवेदन में कहा, "पूछिये इन्हीं से, रंजनाजी, मैंने कितना कहा कि मैं आपके यहां नहीं रुक सकती. मैं अनिष्ट हूं, मेरा रुकना अनिष्ट है! . . . इनसे कहो, अब भी ये मान जायें!"

"सुनो रंजना, यह बेचारी वहां जंगल में कैसे रहती-सहती होगी. इसका तुम्हें खयाल नहीं होता. दो-चार दिन को मेरे पास आकर रह लेती है तो यह तुम्हें उसका आदर्श से गिरना मालूम होता है! बिचारी के दो-एक दिन निश्चिंतताई में बीत सकें, यह तुमसे सहा नहीं जाता!"

रंजना इस उपालंभ पर संकुचित हो सकती थी, पर अचरज कि तनिक भी मंदता उसमें नहीं आयी. बोली, "तो पारमिता, हमें या इन्हें क्या करना चाहिए!"

"मैं बताऊं कि क्या करना चाहिए! मैं आपसे छोटी नहीं हूं! और यह तो मेरी मां के समान हो गयी हैं. . .लेकिन हां, जो मैं देखती हूं दीनता, दरिद्रता और असहायता, और ऊपर कानून का दर्प और दंभ, तो मैं उस कानून को और कानूनवालों को ध्वंस कर डालने के प्रण से बच नहीं सकती. यह संकल्प मेरा नहीं, उन सबका, सभी का है, जिन्होंने रहने का धर्म पीया और पाया है और माफ कीजियेगा रंजना जी, आपके गांधी ने यही किया है, सहने की सीख को पक्का किया है. . .जाकर जेल में चक्की पीसो, जो हुक्म हो पूरा पालन करो. . .यह क्या दासता नहीं है?. . .सुनिये रंजना जी, कानून के डंडे को लेकर ऊपर वाला समझता है कि डेमोक्रेसी के नाम पर हिंसा का हक कुल उसके पास है और बाकी सबके लिए धर्म अहिंसा है, तो आप जो समझिए और कीजिये, मैं इस झूठ को बरदाश्त नहीं कर सकती. वहां वनवासियों, आपदवासियों के बीच में रहकर उन्हें यही बताती हूं कि तुम जंगल के राजा हो क्योंकि उसके अंग हो. साथ हिलमिलकर रहते हो. वन के अनुकूल वन्य तुम्हारा जीवन है. . . क्या हो गया है कि वहां की धरती तुम्हारी नहीं रह गयी. पेड़ तुम्हारे नहीं रह गये और जाने बाहर से थैली लेकर कौन आ गया है कि सब उसका हो गया है. और वही राज का कानून है कि जाना हो तो जाओ जहां हमने शहर बनाया है, मिल और करखाने खड़े किये हैं, जाकर वहां मजदूरी करो, पगार मिलेगी. . .तो मैं कहती हूं उन्हें कि अपने

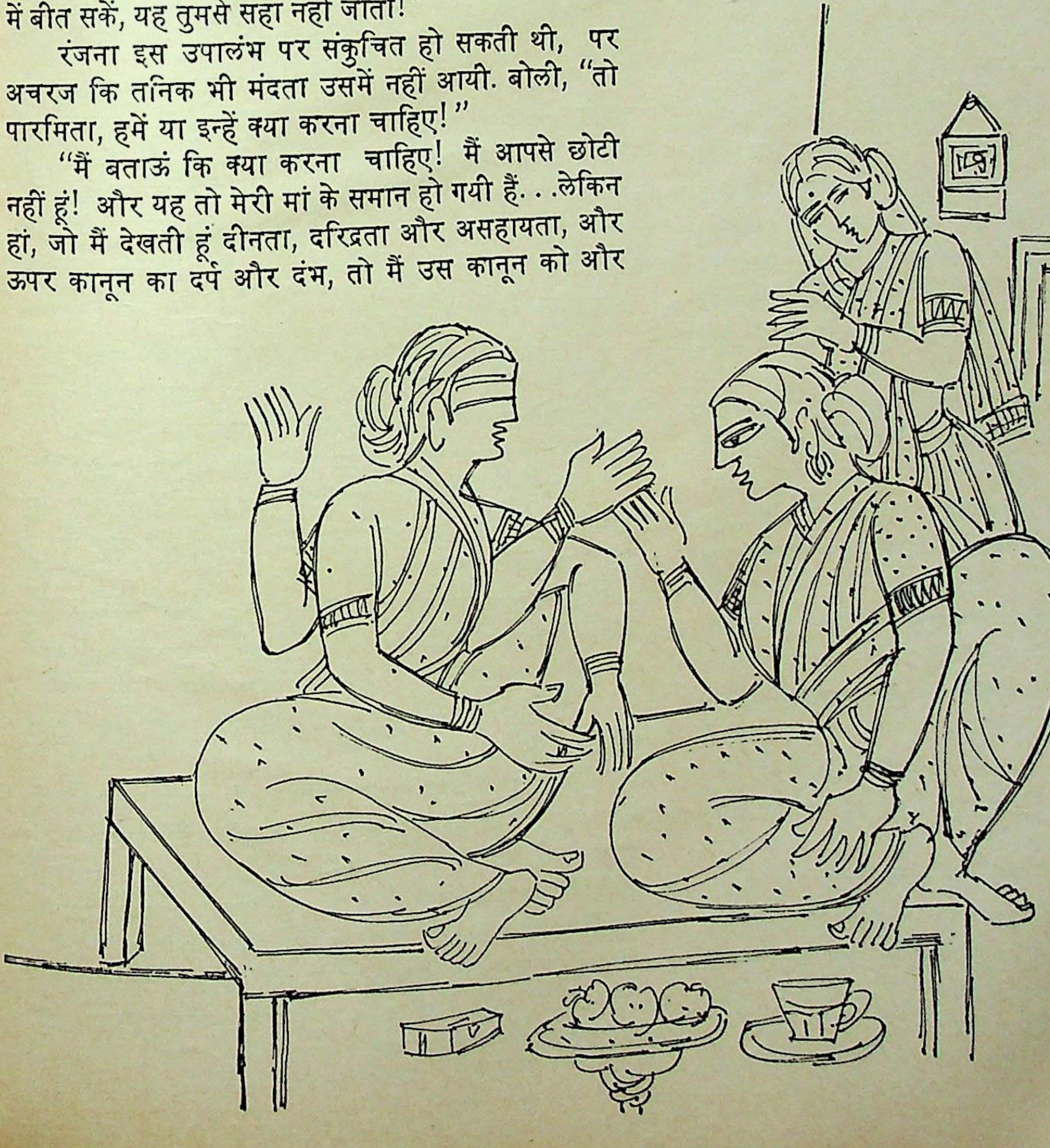

● चित्रांकन : हरिप्रकाश त्यागी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर-कमान उठाओ और मैं तुम्हें लाके इधर-उधर से बंदूकें दूंगी और अपने बस पे अपने जंगल का राज्य संभालो. इस पैसे और परदेसी के राज्य . . . आप कहती हैं रंजनाजी कि मैं यह छोड़ दूं और गोली-फांसी के खतरे से बचकर चुपचाप जा बैठूं. क्योंकि गांधी महात्मा ऐसा कह गये थे?"

बहुत ही भाया यह भावावेश रंजना को पारमिता के चेहरे पे दिपता हुआ, बोली, "नहीं, मैं नहीं कहती, कैसे कह सकती हूं. लेकिन आदिवासियों, वन-वासियों की आपकी अदालत दिन में बैठे और तीर-कमान बंदूक रात के अंधेरे की बाट जोहते न रहें, तो कैसा हो?"

उसी त्वेश में पारमिता बोली "यानी भून दिये जायें वे सब फौज और उनके तोप-गोलों से?"

ढीठ बनके रंजना ने कहा, "क्या हर्ज है!"

"जी नहीं है हर्ज; नहीं है हर्ज आपका मेरा, या किसी का. पर मरें वे जो वन के स्वामी हैं और वे जो बस आततायी हैं. . .सचमुच कोई हरज नहीं है क्योंकि आपकी यह अहिंसा है." पारमिता सामने की कोच में बोलते-बोलते आधी-सी उठ आयी थी.

रंजना भीतर से छू गयी और वाक्य खत्म होते-होते वह उठी और कोच के बांह पर बैठकर उसने पम्मी को बांह से लेकर मानों अपनी गोद में झुकाया और प्यार से कनपटी पर थप-थपाकर कहा, "मैं फिर माफी मांगती हूं. मेरा मतलब. . ."

पारमिता की ओर से कोई अवरोध नहीं हुआ. वह जैसे अपने ही उच्छ्वास से थक आयी हो, चुपचापनी उस गोद के सहारे टिक-सी गयी और दोनों हाथों से अनायास मुंह ढक लिया. वह जान रही थी कि वह ज्यादा कह गयी है, अनुभव कर रही थी कि मूर्खता थी उसकी कि वह इस घर के प्रेम की छांव में नाहक, क्रांतिकारिणी बन उठी! यह भाव उसमें इतने वेग से उमगा कि दोनों हाथों से ढके उसके मुख से हठात धीमी सिसकी-सी निकली!

कुछ देर तीनों में कोई कुछ नहीं बोला. रंजना का बायां हाथ उसे धीमे-धीमे ठहोके देता रहा. और पम्मी उनके नीचे शावक की भांति पड़ी रह गयी.

एकाएक उसने अपने को संभाला और मधु की ओर आग्रह भरी निगाह से देखकर बोली, "दीदी, अब मुझे कितना और रोकोगी?"

"क्यों री, तुझे कष्ट अच्छा लगता है?"

"कैसा कष्ट!"

रंजना इन दो के आत्मीय स्नेह के बीच अपने को व्यर्थ पाकर अपनी कुर्सी में आ गयी थी.

"तो सुख कहूं क्या, जो तू वहां जंगल में पाती है!"

"दीदी, कह नहीं सकती, इतना प्यार मिलता है वहां मुझे प्रकृति की संतानों के बीच. . ."

"और यहां तुझे कष्ट मिलता है, क्यों री?"

"सच पूछो तो कष्ट ही मिलता है. कष्ट इस बात का कि आपकी सेवा तो मुझसे बनती नहीं. पैसा लेती हूं और मुफ्त में मां जैसा प्यार भी ले लेती हूं आपसे. . ."

"नहीं, अभी नहीं जायेगी तू."

"वहां वे मुझे मां मानते हैं. और कहते हैं—मां, तुम जाती हो तो हम अनाथ हो आते हैं."

"तो चली जाना, भई, और देख, इस रंजना का बुरा मत मानना. यह बड़ी प्यार वाली है. किसी आदर्श ने इसके प्यार को जलाया नहीं है!"

पम्मी एकाएक अपनी मां समान दीदी से यह वाक्य सुनकर चिहुकी! यह अनजाने में क्या कह गयी दीदी?

बोली, "रंजनाजी, आप मुझसे नाराज नहीं होंगी. आप ईश्वर को मानती हैं. वह सब कुछ सहता है. आप भी मुझे सह लेंगी. . .पर मैं ईश्वर को इसीलिए नहीं मानती कि उसके सहते रहने को नहीं मान सकती. . . यहां तक कि, माफ करना, आप लोगों के रहने-सहने के तरीकों को. . . बताया गया कि आपके पति हैं, पुत्र हैं."

"हां, हैं."

"फिर आप अकेली क्यों रहती हैं?"

"तुम भी तो रहती हो बिना पति-वति के. . .कुछ लगता नहीं कि. . ."

पम्मी मुस्करायी भी. बड़ी प्यारी थी शिशु जैसी वह मुस्कराहट. उसने कहा, "क्या लगेगा जब कोई मेरे हुआ ही नहीं. आप कहिये, याद नहीं आती होगी आपकी उनको. . .और आपको उनकी?"

"आती है, खूब आती है. लेकिन मेरे पास तो मौका है कि जब चाहे बुला लूं, या खुद चली जाऊं. तुम नाहक यह सुभीता छोड़े बैठी हो और जाने क्या-क्या करके मान लेती हो कि तुम भरी हुई हो."

जोर से बोली पारमिता, "क्या मतलब?"

"उनको परे भेज दिया है स्टेट्स और सुनते हैं, उन्होंने अब शादी भी कर ली है."

"जी हां, कर ली है! . . .तो कहिए आपको क्या कहना है?"

"—वहां वनवासियों में तुम्हें प्यार मिलता है, आदर श्रद्धा का. यहां मिलता है मां का. पर यह काफी है?"

"आप शायद प्यार के व्यवसाय की बात कर रही हैं!"

पारमिता के मुंह से यह तीखी बात निकली तो मधु को काट गयी. बोली, "यह क्या पम्मी? रंजना, मैंने कहा था न तुझे, मेरे लिए गुरु समान है."

लेकिन रंजना हंसकर बोली, "हां, प्यार के व्यवसाय की ही बात कर रही थी, स्त्री के लिए व्यवसाय दूसरा कोई हो नहीं सकता."

पारमिता में जैसे सुनकर घोर वितृष्णा का भाव उठा, बोली, "ओ."

"हां, मैं दुनिया की बात नहीं सोचती. समाज को बदलने की बात मैं नहीं सोचती. अन्याय अत्याचार की मुकाबले की बात भी मैं नहीं सोच पाती. सोचने के लिए मेरे पास सिर्फ यह है कि मेरे और दूसरे के बीच क्या है. अगर संशय है, भय है, द्वेष है, क्रोध है तो मैं समझती हूं, यह ठीक नहीं है. न मेरे लिए ठीक है, न दूसरे के लिए ठीक है. और इसमें मैं मान बैठी हूं कि प्यार से किसी को भी बाहर नहीं मान लिया जा सकता है." कहकर उसने पारमिता को देखा.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारमिता ने मानो यह जताने के लिए कि उसने सुन लिया, उसी गहरे विचिकित्सा के भाव से दुहराया "ओ. . ."

मधु बीच में बोली, "यह तुम लोगों ने क्या बहस छेड़ दी है. . .हां, पम्मी, एक बात तो है, मैंने तुझे पहले भी कहा था, कब तक तू रहने की सोचती है इस क्रांति-भ्रांति के काम में?"

"दीदी, तुम सोचती हो मैं ज्यादा जी पाऊंगी."

"अरे क्यों नहीं जियेगी तू भली मानस! ऐसा क्या ठान लिया है मन में?"

"सरकार जीने देगी!"

"मरने की राह तू खुद पकड़े तो कोई क्या कर सकता है."

"तो यही तो कह रही थी मैं दीदी कि मैं जिस राह पर हूं, वहां जी नहीं पाऊंगी ज्यादा. ज्यादा क्या, वहां तो अगले दिन का पता नहीं रहता. . .और जानती हो, उस राह किस बल से जी रही हूं और चल रही हूं. तुम्हारे प्यार के बल से और सबके प्यार के बल से."

"किन सबकी बात करती है? कौन रह गया है तेरा अब?"

"बात करती हूं सबकी. . .जनता की, मानवता की."

"अच्छा, सुन लिया. और देख, मैंने रंजना को बुलाया था खास तौर पर तुझसे बात करने के लिए, तुझे समझाने के लिए. . .तेरी मां मुझसे बहुत आस रखती थी. तू पढ़ती गयी और इनाम पर इनाम पाती गयी और तेरी मां का मन फूला न समाता था. उसके सपने थे कि. . .मैंने इन रंजना को इसीलिए बुलाया था. मुझसे यह उम्र में बड़ी नहीं है, बड़ी मैं हूं. . . .पर मुझसे मेरे सेठ को बड़ी शिकायत थी, शिकायत थी कि मुझे उनका ध्यान नहीं है, जाने किस धरम का, सुरग का, मोक्ष का ध्यान है. जानती हो सेठ ने मुझे इनके पास क्यों भेजा? इसलिए भेजा कि इनके बारे में जाने क्या-क्या सुना जाता था. रंग-राग में रहती हैं और मैं जाऊंगी उनके साथ तो मुझे भी उसका रस लगेगा. रस लगा और पति खुश हुए, लेकिन क्यों? इसलिए कि इन्होंने कहा मुझे कि सोचो, तुम धर्म अध्यात्म में इसीलिए ही न झुकी जा रही हो कि पति से, संसार से, सबसे तुम्हें शिकायत है. शिकायत छोड़ दो, एकदम छोड़ दो, जो है उसे वह रहने दो. सब खुद क्यों न रहें? और अपना काम बस सेवा का रखो. दोष देखने के लिए हरेक के पास अपना आपा है. वगैरह-वगैरह. . .और मैं देखती हूं, सेवा निभ नहीं सकती, बड़ी बातों को सिर में भर लेने से लेकिन. . ."

"लेकिन क्या तो बहस ले बैठी."

पारमिता ने कहा, "दीदी, वही समझा तो रही थीं रंजना जी कि स्त्री के लिए बस एक काम प्रेम है. इन्होंने तो व्यवसाय कहा था. मैं हल्का करके काम कह रही हूं!"

"तो उखड़ती क्यों है इस नाम व्यवसाय से? देख मेरे पास पैसा है, समय-समय पर तुझे देने के लिए. मैं क्या व्यवसाय करती हूं उस पैसे के लिए? जबसे इनके पास आयी हूं, सेठ की थैली मेरे लिए खुल गयी है. क्योंकि मैंने प्रेम के व्यवसाय का मंत्र इनसे सीखा है. प्रेम के फल में नहीं, स्वयं प्रेम में ही उस व्यवसाय की सिद्धि है. क्यों रंजना, मैं ठीक कह रही हूं?"

## जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी

**मेरा डूबना-मरना भी इतना आसान नहीं है, भाई. अभी जाने कितने थपेड़े और खाने हैं, लेकिन तुम उन थपेड़ों से दूर हो, यही संतोष है. मैं तुम्हें प्रेम करती हूं, इसी से कहती हूं.**

(त्यागपत्र में—मृणाल, प्रमोद से)

**स्त्री को कुछ अन्य सुविधाएं हैं, कुछ असुविधाएं. जहां तक नामवरी की बात है, स्त्री का मार्ग खुला है, सीधा है. और बदनामी के लिए भी वह उतना ही सहज भाव से खुला हुआ है. सार्वजनिक जीवन में स्त्री जल्दी ही बह सकती है, क्योंकि वह अस्वीकृति कम पाती है. लोग उसे प्रेम, अधिक संभ्रम, अधिक आदर-भाव से देख सकते हैं. पर यही सुविधाएं आगे जाकर बाधाएं हैं. इनके कारण उसके जीवन में पूर्णता आने की विवशता उपस्थित नहीं होती.**

(सुखदा)

**स्त्री को राह देना उसे न समझना है. गति वह उतनी नहीं चाहती जितनी स्वीकृति चाहती है. स्वीकृति में दूसरे का अपने पर स्वत्व, शायद स्वामित्व भी चाहती है. वह न आकर पुरुष की ओर से निपट अनुगति आती है तो इस पर स्त्री का क्षोभ-सीमा लांघ जाता है.**

(सुखदा)

**स्त्री कोमल है. जानते हो क्यों? इसलिए कि बल चाहती है. बल का प्रयोग चाहती है. उसके बिना वह अशांत है. सुनते हो, सब खतरे को शांत करने का उपाय है और स्त्री के लिए है वह पुरुष.**

(जयवर्धन)

---

"दीदी, यह न कहलाना चाहती हो मेरे लिए इनसे कि घर-गिरस्ती मैं रचूं और. . ."

"नहीं." बीच में ही रंजना ने कहा. "नहीं, वह घर गिरस्ती हो सकती है, नहीं भी हो सकती है. पर होने, न होने-के मूल में होना चाहिए प्रेम का ही व्यवसाय. 'व्यवसाय' मैं इसलिए कह रही हूं कि आदमी बाहरी दुनिया में नोच-खरोंच पाता रहता है. पैसा जिस बाजार में से कमाया जाता है, वहां बस मुकाबला मुठभेड़ है स्वार्थों का. स्पर्द्धा है, प्रति-स्पर्द्धा है, और जीतता उतना है जितना वह हिसाबी और हृदयहीन हो सकता है. बाजार से पैसा जीतकर लाता है वह घर में कि कुछ स्वस्ति मिले, स्पर्द्धा नहीं. शांति मिले. वह मिले जिसे प्यार कहते हैं और जो अमृत होता है और वह औरत के पास है. अगर सच्ची व्यवसायी है स्त्री तो इस मूलधन को लुटायेगी नहीं. इस पूंजी से सावधानी से काम लेगी. लाड़ वाला प्रेम है जो लड़ाई को आवश्यक बनाता है. तुम तो इतना पढ़ी हो और तुम्हारा रिकार्ड है. पर गीता में 'व्यावसायित्मिका बुद्धि' की बात आती है. और वह भगवद्गीता है. उस बुद्धि के साथ प्रेम का व्यापार अगर तुम कर सकोगी, मैं कर सकूंगी, यह मधु कर सकेगी तो अन्याय-अत्याचार ऊपर से कटुता


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दिखेगा, पर भीतर से उसकी जड़ें चलेंगी. दिखता वह है जो धरती फोड़कर ऊपर आ जाता है. पर उपजता है वही धरती के गर्भ में से. और पारमिता, भयंकर विश्वयुद्ध की जो घटाएं ऊपर छायी हुई हैं और सबको विभीषिका में डाले हैं, उसे कण-कण नित्यप्रति हम अपने बीच में पैदा कर रहे हैं. वहां तो बादल पांत बनाकर काले-काले इकट्ठे हो आये हैं, बना हम उन्हें घर-घर में रहे हैं. . .! पर छोड़ो इस बकवास को. तुम्हें याद नहीं आती उनकी जो बड़े वैज्ञानिक बन गये हैं और अब स्टेट्स में हैं. कह सकती हो कि तुम्हारा क्रांति-कर्म उनसे अछूता है, फिर पूछती हूं, कह सकती हो, अछूता है?"

"उन्होंने शादी कर ली है. . ."

"ठीक किया है उन्होंने. तुम क्या मान सकती हो कि उनकी वैज्ञानिक प्रसिद्धि में इससे सहायता ही मिली है. . . और तुमने विवाह ठान लिया है अपना क्रांति से. . .अच्छा है, इसमें भी गलती नहीं है. पर क्या यहां जो तुम्हें मधुजी में से मां के प्यार की असीस और वहां बनवासियों से जो अकृत्रिम स्नेह मिलता है, उसी में से सारे काम-धाम का बल तुम्हें प्राप्त नहीं होता. . ."

सहसा पारमिता बोली, "मुझे आप समझा रही हैं! ठीक है, समझाइये. जितना हो सके, समझा डालिए. मैं सुनती रहूंगी."

मधु ने डपटकर कहा, "पम्मी!"

पारमिता रोने को हो आयी, बोली, "आप मुझे छोड़ क्यों नहीं देती हैं? मैं भटक गयी हूं, बहक गयी हूं, पगला गयी हूं. तो मैं कब कहती हूं कि नहीं. आपसे विनती करती हूं कि मेरे बारे में सोचना बिलकुल छोड़ दीजिए. . .आपके हाथ जोड़ती हूं." और सचमुच पारमिता ने हाथ जोड़े और सिसक उठी. फिर उसने दोनों हाथों से मुंह लिया और घुटनों में छुपा लिया.

इस अप्रत्याशित पर मधुरिमा ने चाहा कि उठकर उसे गोद में भर ले, लेकिन रंजना की आंखों में वर्जना देखकर वह अपनी कुर्सी में ठिठकी बैठी ही रह गयी.

कुछ मिनटों तक निःस्तब्ध मौन ही बना रहने दिया गया. रह-रहकर पम्मी की सुबकी की ध्वनि सुन आती थी. मिनट पर मिनट होते गये. मधुरिमा ने अनुमति के लिए रंजना की ओर देखा और देखा कि वहां तनिक भी पसीजन नहीं है. मानो चाहती हो कि पम्मी में जो है, आंसू की राह सब बह जाये. सबमें स्वत्व है जो कि रहना भी चाहिए लेकिन उसका अंश जब-तब अगर पिघलता भी रहे तो स्वत्व वह कड़ा-रूखा बनने से बचता और स्वस्थ स्निग्ध बना रह जाता है. यह रंजना ने अपने अनुभव से सीखा था और पाया था कि आंसुओं से बड़ा उपचार मानाभिमान के रोग के लिए दूसरा कोई नहीं है.

समय लंबा होता चला गया. सिसकी अब नहीं आ रही थी. वक्ष का उठाव-गिराव भी समसामान्य हो गया था. लेकिन पारमिता उसी भांति घुटनों में मुंह लेकर पड़ी रही. इस नितांत चुप्पी में ही बराबर के कमरे से फोन की तेज घंटी बजी. बहुत कम होता है कि फोन अंतःपुर तक आने दिया जाये. मधुरिमा गयी और लगभग तुरंत ही वापस आकर बोली, "रंजना, तुम्हारे लिए है."

"मेरे लिए!" . . .रंजना को अचरज हुआ. यह नहीं होना चाहिए था. गलती की है किसी ने कि मुझे यहां फोन मिला दिया है. बहुत रूखे-तीखे भाव से उसने कहा, "क्या है, कौन है?"

"मैं हूं. . ."

"कौन! तुम. . .!"

"हां. . .मैं. तार के बाद खत की राह देखा किया. नहीं आया तो मैं आ पहुंचा हूं."

"कहां से बोल रहे हो?"

"अपने होटल से."

"वहां क्यों हो?"

"तुमने पता कब दिया था?"

"ओह तो नंबर दो अपना. मैं पांच मिनट में बात करती हूं."

नंबर नोट किया, वापस कमरे में आयी कि दौड़कर पारमिता उसके गले से लगकर जोर-जोर से रो आयी और रंजना ने पुचकारते हुए उसे वापस कुर्सी में बिठाया. कहा, "तुम मेरे साथ चल सकोगी घर?"

"मैं?"

"मधुरानी, मैं इन्हें साथ ले जा सकती हूं?"

"कैसे ले जा सकती हो?"

"फोन यह पियेर का था. फ्रांस से अभी आया दिखता है. पम्मी का मन बहलेगा उससे. बड़ा खुशदिल आदमी है."

"लेकिन तुम्हें मालूम है. . ."

"ओह. वो मुझपे छोड़ो. कम हुशियार मुझे न मानो. लेकिन यह बताओ, मानिक सेठ को पता है इसका?"

"मैं पागल हूं कोई?"

"चलोगी पम्मी तुम?"

पारमिता ने टक बांधकर रंजना को देखा, जाने क्या समझा और झटक के बोली, "नहीं. . .!"

उस स्वर में एक निश्चितता थी, दृढ़ता थी. स्पष्ट था कि जिद नहीं है. व्रत है. रंजना ने इस पर फिर आग्रह नहीं किया और मधुरिमा से पूछा, "मैं पियर को यहीं तुम्हारे घर बुला सकती हूं?"

"कौन है वह?"

"बड़ा प्यारा दोस्त है एक. मेरे तार पर भागा आया है. बेचैन-सा मालूम होता है. मैं पम्मी के बिना जाऊंगी नहीं इसलिए तुम इजाजत दो तो उसे यहीं बुला लूं."

एकाएक चीखकर पारमिता ने कहा, "नहीं." और उठकर वह झपटी और बराबर के कमरे में भाग गयी. □

**समाप्त**

---

**पुस्तकाकार में यह उपन्यास पूर्वोदय प्रकाशन, 7/7 दरियागंज, नयी दिल्ली-2 से शीघ्र प्रकाश्य**

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भरतमुनि के वंशधर सूत्रधार

**राजनीति के दांव-पेंच, उथल-पुथल और उसके अंतर्विरोध... हम उससे घबड़ाते नहीं, उससे भाग कर दूसरे किनारे पर जा बैठते हैं... कि हम तो थिएटर वाले हैं. हम उसे साफ करना चाहते हैं, हमारा हथियार रंगमंच हो या फिल्म! मैं उन व्यथित बुद्धिजीवियों में नहीं हूं जो काफी हाउस में, सड़क पर, चौराहों पर तो राजनीति को गाली दें लेकिन दूसरे दिन अपने तबादले के लिए, लड़के की नौकरी के लिए...मकान की सुविधा के लिए, अकादमी के अनुदान के लिए मंत्री के दरवाजे पर माथा टिकाये मिलेंगे. जो है, अगर वह गलत है तो मैं उससे अपने ढंग से लड़ता हूं...**

## मैं राजनीति के बाहर नहीं हूं...

सथ्यू से इस सूत्रधार की पहचान पुरानी है. 'गांधी' पर बन रही फिल्म के विरोध में हम दोनों एक कोण पर साथ-साथ मिल चुके थे. बतिया चुके थे. यह बात दीगर है कि उनके विरोध का तर्क दूसरा था और सूत्रधार का दूसरा. बहरहाल वह बात जहां की तहां रह गयी. आज एक लंबे अरसे बाद हम फिर मिल रहे थे. हिमाचल भवन के ओपन एयर थियेटर की सीढ़ियों पर बैठे ठहाके लगा रहे हैं. सथ्यू के साथ सतीश सहगल, सुमीता और साधना हैं. बातचीत हिमाचल भवन की भोजन-दुर्व्यवस्था से शुरू होती है और आते-आते रंगमंच पर आ जाती है. यहां सूत्रधार उसी हिस्से को दे रहा है जिसका संबंध रंगमंच से है.

**▣ सथ्यू साहब 'इप्टा आंदोलन' के बारे में बताइए, आप इसमें कैसे आये?**

ये बड़ा गड़बड़ कर रहे हो! ये मशीन (टेप) इसका मुंह. . .हां मूवमेंट तो मैं जानता ही नहीं. मैं तो अभी-अभी आया हूं और इप्टा शुरू हुए करीब. . . 1940 से. और मैं तो यही कोई दस-पंद्रह साल से हूं. मैं यहां दिल्ली आया. दिल्ली से बंबई गया. . .वहां केवल दो ग्रुप थे. एक सत्यदेव दुबे का और दूसरा इप्टा का. तो मेरे लिए समस्या खड़ी हो गयी.

**▣ क्यों?**

सीधी-सीधी बात है... मैं जनसंघी मानसिकता से बचता रहा हूं. मैं इप्टा में गया. वैसे उस समय इप्टा बहुत-बहुत बेकार हालत में थी. कभी-साल में दो-चार शो हो गया तो हो गया, वर्ना ऐसे ही ठंडा था मामला. फिर मैंने शुरू किया. तेजपाल में हर शुक्रवार को. एक शो रखा गया और नये लोगों के लिए ड्रामा कंपटीशन शुरू किया. उसकी वजह से काफी लोग आने लगे. फिर तो हमारे थिएटर को लोग मिलने लगे. इस समय तो तकरीबन साठ लोग मेरे साथ हैं.

**▣ तब के इप्टा और आज के इप्टा में कुछ फर्क आया है?**

—अब वो 'इप्टा' नहीं है. पहले पूरे देश में था, सेंट्रल ट्रूप बंबई में था लेकिन जब कम्युनिस्ट पार्टी टूटी तो इप्टा भी बिखर गया. अब क्या है? कुछ भी तो नहीं.

**▣ अब क्या है?**

अब हम किसी के साथ नहीं हैं. किसी पोलीटिकल पार्टी के साथ नहीं हैं. पूरी तरह से रंगमंच को समर्पित हैं. अब तो हमारे पास दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी भी आते हैं. काम करते हैं लेकिन धीरे-धीरे उनका मिजाज बदलता जाता है.

**▣ सथ्यू साहब! अब आप यह बताइए कि कोई भी नाटक जिसे आप मंचित करते हैं. . . किस मापदंड से मापते हैं कि यह दक्षिणपंथी. . . प्रतिक्रियावादी नहीं है?**

हां सबसे पहले सामाजिक संदर्भ में देखते हैं. देखते हैं कि कहीं यह सांप्रदायिक तो नहीं है. वगैरह-वगैरह. उसका सीधा तरीका है, पहले जब हम उसे पढ़ते हैं उस पर बातचीत करते हैं फिर उसे कार्यकारिणी के सामने रखते हैं. बहुत कुछ तो उस बहस से पता चल जाता है कि इसमें क्या है, क्या नहीं है!

**▣ अब तक के चर्चित और अधिक खेले जाने वाले नाटक कौन-कौन से थे?**

'शतरंज के मोहरे'. . . उसके 125 शो हुए. 'बकरी' 94 शो. एक कमेडी है. उसके 50 शो. फिर ब्रेख्त का 'सफेद कुंडली' है, बहुत हैं. अभी नया 'प्ले' कर रहा हूं. मराठी नाटक है. . .'लोक कथा'. देखिये, क्या है कि हम जो भी 'प्ले' उठाते हैं दस-बारह शो तो करते ही हैं फिर खर्च निकल आता है.

**▣ सथ्यू साहब! एक बिल्कुल अलग सा सवाल है. आपने दोनों जगह नाटक किये हैं दिल्ली में और बंबई में भी. दोनों के मूल चरित्र में कोई फर्क?**

हां है! बंबई का रंगमंच सीजनल नहीं है. वहां हर रोज थियेटर चलता है. मराठी, सिंधी, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगू. सब भाषाओं के प्ले होते हैं. लेकिन यहां (दिल्ली) नहीं हैं. यहां सीजन में करते हैं. एक 'प्ले' उठाया, दो-चार शो किया और फिर सो गये. इसीलिए यहां मूवमेंट नहीं बन पा रहा है. वहां बंबई में हर रोज है. मजमा है, नादिरा का ट्रूप है. दिनेश ठाकुर का है. आजकल नसीरुद्दीन ने भी एक बनाया है. ओम कटारे ने एक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

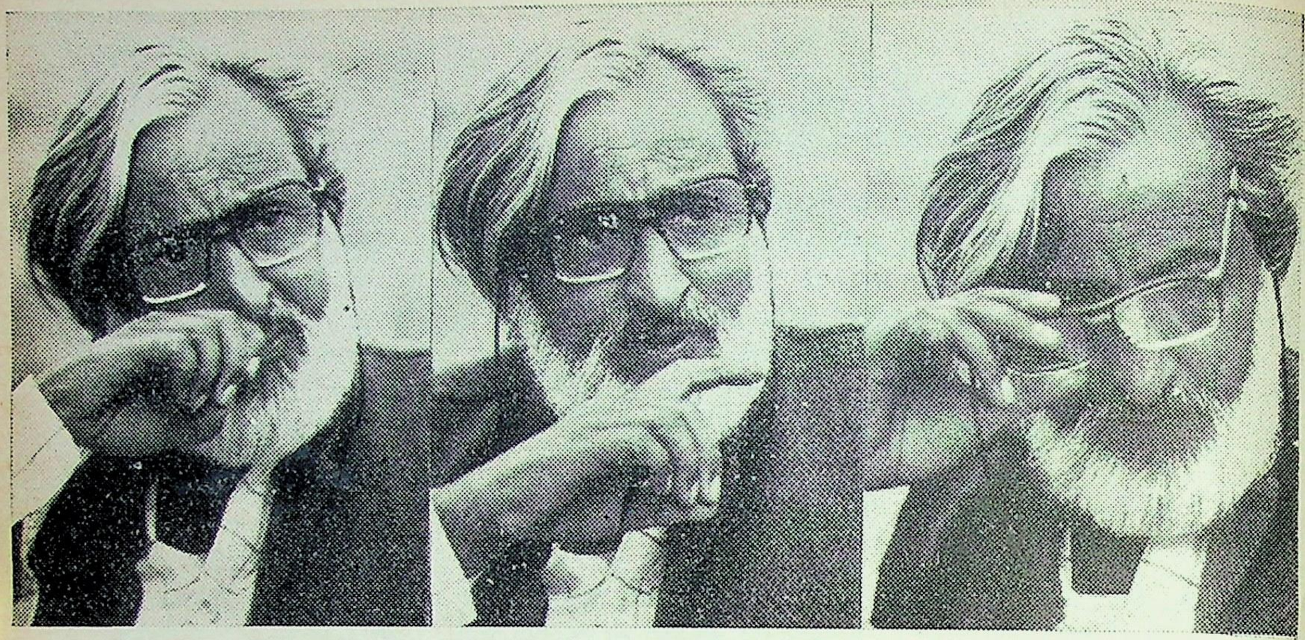

● थिएटर न केवल आम आदमी के बीच जाए बल्कि उसकी समस्याओं से भी जुड़े.

बनाया है.

**▣ रंगमंच का जितना साफ-सुथरा रूप यहां है या नये-नये प्ले यहां हो रहे हैं क्या बंबई में भी. . . ?**

देखिए! जहां तक प्ले की बात है इसी तरह के प्ले वहां भी हो रहे हैं और सच बात तो यह है कि वहां पहले हो जाता है. विजय तेंदुलकर को ले लीजिए. वहां पहले हो जाता है. फिर यहां आता है. क्योंकि हिंदी में तो कुछ लिखा ही नहीं जा रहा है.

**▣ थियेटर डिजाइन और फार्म को लेकर. . .**

हां! बिल्कुल हो रहा है. प्रयोग हो रहे हैं. नये-नये प्रयोग. सत्यदेव दुबे यही करते हैं. अभी एक अंग्रेजी प्ले किया. पहले एक किया था 'तोता बोला'. हां, रियलिस्टिक प्ले मराठी, गुजराती में होते हैं. विजया मेहता, अरविंद देशपांडे, रोहणी, विजय देव हटंगड़ी जैसे भी लोग हैं. . . जो मराठी में भी रंगमंच पर प्रयोग करते हैं.

**▣ आप हिंदी रंगमच पर बता रहे थे. . .जैसे सत्यदेव दुबे पिछले डेढ़ दशक से बंबई रंगमंच पर जमे हैं. अगर आपको इनकी इस यात्रा के बारे में बोलने को कहा जाये तो . . . क्या कहेंगे!**

हां हुआ! आज के दस-पंद्रह साल पहले जो कुछ कर रहे थे अब नहीं करते. इसे ग्रोथ कहा जा सकता है (ठहाका) लेकिन दुबे का स्टाइल है कम खर्च में 'प्ले' करना. सेट नहीं लगाता. जैसे एक ट्रेंगल रख दिया. बस आप समझ लीजिए. वह दृष्टि भी नहीं है. वह बस ऐक्टर है. पर वह डायलाग पर जोर देता है. वैसे मुझे नहीं कहना चाहिए. एक डाइरेक्टर दूसरे डाइरेक्टर पर. . . लेकिन अब आपने सवाल ही गलत पूछा है तो बता देता हूं (ठहाका). . . सेट पर छोटा-मोटा एक्टर हो तो वह पूरी कोशिश करता है कि सत्यदेव दुबे की ही तरह काम करता रहे. क्योंकि वह पंडितजी को पंडितजी मानता है. पर हम लोग तो मानते नहीं, वह सिर्फ सत्यदेव दुबे है (ठहाका) यह फेक्ट है.

**▣ अब हम फिर थिएटर पर आते हैं. रंगमच को इस तकनीकी दुनिया से कोई खतरा. . .?**

रंगमंच लगातार होता रहे तो कोई खतरा नहीं. लेकिन उसके लिए काम करना पड़ता है. अब दिल्ली की तरह होगा, तो खत्म ही हो जायेगा.

**▣ क्यों?**

वह एलिटिस्ट मूवमेंट है. एक खास वर्ग है, वही पेंटिंग देखता है. जिस तरह क्लासिकल म्यूजिक में चला गया उसी तरह थिएटर देख लिया. इसके लिए तो दर्शक बनाने होते हैं.

**▣ कैसे?**

इसे बाहर ले जाना होगा. जैसे हम लोग पहले हिंदुस्तानी थिएटर जब करते थे. निकल गये कहीं किसी मुहल्ले में, मिल-कारखाने के दरवाजे पर, कोयला खदान बस्तियों में.

इसके लिए समय देना पड़ता है. ये नहीं कि साल में तीन महीने थिएटर किये फिर सो गये. इसके अलावा ग्रुप का दिमाग साफ रहे कि वह न केवल आम आदमी के बीच जाये बल्कि उसकी सामयिक समस्याओं से भी जुड़ा नाटक करे.

**▣ आपको इस समय कौन-सी समस्या दिखाई पड़ती है जिसका चयन आप पहले करेंगे?**

राजनीतिक. . . इस के चलते सारी गड़बड़ी है. मैं पहले इसी समस्या को उठाना चाहूंगा.

**▣ सथ्यू साहब! आप थिएटर में कैसे आ गये?**

पढ़ रहा था तभी से शुरू कर दिया. बी. एस. सी. कर रहा था. बीच में ही छोड़कर बंबई भाग आया. फिर वहां से दिल्ली. यहां हम और हबीब


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तनवीर) साथ-साथ बेगम जैदी ने काफी मदद किया. उस समय 'ओखला थिएटर' शुरू हुआ. करौलबाग की तरफ थिएटर लिया. स्टेज बनाया और थिएटर दोनों ही करते थे. करीब दो साल चला. लेकिन फिर उन्होंने थिएटर वापस ले लिया.

**▣ किसने?**

मोरारजी भाई ने, उन दिनों आदिमजाति संघ के अध्यक्ष थे. उन्होंने सोचा कि इन लोगों ने काफी पैसे बनाये हैं. मोरारजी को कल्चर-वल्चर से कोई वास्ता तो है नहीं?

**▣ फिर फिल्मों में?**

हां पहले छोटे-छोटे काम किये. एड फिल्म. . . चिल्ड्रेन फिल्म सोसाइटी की. फिर स्क्रिप्ट दी एन. एफ. डी. सी. को 'कहां-कहां से गुजर गया.' रिजेक्ट कर दिया गया. अब उसे बंगाल सरकार ने फाइनेंस किया. फिल्म आ गयी फिर दूसरी फिल्म 'गरम-हवा' के लिए अप्लाई किया. मंजूर हो गयी. अभी कल जो फिल्म आपने देखी 'सूखा'. . . उसे बनाया.

**▣ 'सूखा' तक आप कैसे पहुंचे?**

हुआ ये कि अनंतमूर्ति (यू. आर.) ने मुझे सूखा की स्क्रिप्ट दी. पढ़ा. मजा आ गया. जबरदस्त. . . पावरफुल स्क्रिप्ट थी. लेकिन वह अधूरी लग रही थी. फिर रामा ने उनसे बातचीत की, बहुत सारी घटनायें जो उन्होंने लिखी नहीं थीं. . . लेकिन दिमाग में थीं उन्हें जोड़ा गया. फिर फिल्म बनायी. यह सच्ची कहानी है. □

---

# लघुकथा

## भरा पेट

**▣ नफीस आफ़रीदी**

वह बहुत सज्जन, सौम्य और सुशील थे. वह बड़े दानी, उदार चित्त और गरीब परवर. उनके द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जा सकता था.

वह एक बड़े जमींदार थे. उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता था, कारिंदों की पलटन सब निबटाती रहती. खालीपन को पाटने के लिए वह कुछ शौक करते थे. इन शौकों में एक ऐसा था, जो उन पर भूत की तरह सवार था. . . और वह था—काव्य के प्रति गहरा लगाव. वह ऊब-डूबकर सुनते. प्रशंसा करते और कवि को जेबों में धन ठूंस देते.

उनकी काव्य रसिकता पर मुग्ध हो दूर-दूर से कवि आते. आने वाले दो काम जरूर करते. एक तो कपड़े ऐसे पहनते, जिनमें ढेरों जेबें होतीं, दूसरे जमींदार साहब की शान में कुछ गीत लिखकर लाना न भूलते.

एक बार उनकी चौहद्दी में एक नौजवान कवि आया. उसके तन पर एक फटा कुर्त्ता था, जिसकी जेबें गायब थीं, बाल उलझे थे और चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं.

उसे देखकर श्रीमान् का दिल रो उठा. आंख में आंसू भर कारिंदों को आदेश दिया कि कवि को स्नान कराया जाये. उम्दा पोशाक पहनायी जाये और भरपेट भोजन कराने के बाद दीवानखाने में आसन दिया जाये. सब ठीक-ठाक हो गया. तब कवि ने गीत गाये. बहुत प्यारा गला था, बहुत मीठी आवाज थी. ऐसा कवि न देखा. ऐसी कविता न सुनी. उनका जनम सफल हो गया.

गीत बंद हुए, तो वह चौंके, "रुक क्यों गये? और सुनाओ कवि!"

"सब खत्म हो गये मालिक!" कवि ने मासूमियत से कहा.

"सुनाओ! सुनाओ! . . .हमारी शान में कुछ. . ." वह विचलित हो उठे.

"वह तो नहीं है मालिक!" कवि ने सीधेपन से कहा.

"कमाल है! यहां जो आया, हमारे गीत गाता आया और तुम. . . !" वह हैरान थे.

उन्होंने तुरंत कारिंदों को बुलाया और हुक्म दिया कि कवि को मेहमान खाने में ठहराओ. रात को यह गीत लिखेंगे. प्रातः सुनायेंगे.

ऐसा ही किया गया. कारिंदों ने खूब अच्छी तरह समझा दिया कि छुटकारा तभी संभव है, जब वह एक अदद गीत मालिक की सेवा में अर्पित करेगा. ऐसा करने पर इतना माल पायेगा कि सात पुश्तें तर जायेंगी.

शाम को कवि बाग-बगीचों में घूमा, महल-दुमहले देखे. प्रकृति और वैभव की छटा बिखरी पड़ी थी. उसे लगा वह भूले से स्वर्ग में चला आया है. कोई फिकर, कोई उलझन नहीं थी. सारे झंझट-झमेले पीछे छूट गये थे.

वह सोचता रहा और ढुलक-पुलक से भरता रहा और गहरी नींद सो गया.

सवेरे जब मुर्गे ने बांग दी और झरोखे से चिपटी बेल पर चिड़ियां चहचहाईं, तो उसकी नींद टूटी. वह झरोखे के पास आ गया. बाहर खूबसूरत सवेरा बिखरा पड़ा था. वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा, फिर आवाज तेज होने लगी. इधर-उधर फैलने लगी. बगीचे में चिड़ियों को चुग्गा खिलाते श्रीमान् ठिठक गये. कवि गा रहा था. गाये चला जा रहा था. स्तुति, वंदना, निवेदन, प्रशस्ति. . . प्रशंसा-ही-प्रशंसा. . . श्रीमान् ठगे से खड़े थे. मंत्र-मुग्ध, भाव विभोर-से.

मगर मृदु-कंठी कवि की आवाज फट गयी थी. उसमें भंड़ैती आ गयी थी. लेकिन श्रीमान् प्रसन्न थे और कवि को जमींदारी में उच्च पद पर आसीन कर दिया था. . . और दूर-दराज गांव में कुछ समय ढूंढ मची रही; पर कवि नहीं मिला. जल्दी ही लोग थक गये. सबने आखिर ठंडी सांसें छोड़ीं और अपने-अपने हिस्से के दुख-दर्द स्वयं ही समेटने लगे. □

60, ब्राह्मनान स्ट्रीट, हापुड़-245101

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अकेली नारी की सामाजिक स्वीकृति का सवाल

▣ सुरेश उनियाल

किसी भी विपरीत परिस्थिति में आदमी के सामने दो ही रास्ते होते हैं. एक तो उसे नियति मानकर स्वीकार कर लेना और उससे होने वाली तकलीफों को भोगते जाने का शहीदाना रुख अपनाये रखना. दूसरा रास्ता है उस परिस्थिति को अंतिम न मानकर उससे टकराना और बाहर आने के लिए अपने प्रयत्नों से रास्ते बनाना. राजी सेठ का हाल ही में प्रकाशित उपन्यास **'तत्-सम'** इन्हीं रास्तों की एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक पड़ताल है.

उपन्यास के केंद्र में है वसुधा. उम्र करीब तीस साल, लखनऊ में किसी कालेज में समाजशास्त्र पढ़ाती है. विधवा है. पति की मौत करीब छह साल पहले एक दुर्घटना में हो गयी थी. अपने मायके में रहती है. मां, भाई, भाभी, भाई के बच्चे, एक छोटा भाई, ये लोग हैं परिवार में. वसुधा के भविष्य को लेकर भाई और मां दोनों ही असहज हैं. भाई चाहता है कि वसुधा दूसरी शादी कर ले. मां चाहती है कि वह समाज की मर्यादा में रहकर अपने वैधव्य को स्वीकार करके उसी को नियति मान ले. अपने प्रति ये दोनों ही दृष्टिकोण वसुधा के मन में खीझ पैदा करते हैं. उसकी शिकायत यही है की इस सारी स्थिति को लोग सहजता से क्यों नहीं लेते. कोई मित्र-परिचित जब वसुधा के वैधव्य की बात सुनता है तो उसका व्यवहार तत्काल ही सहानुभूति पूर्ण हो जाता है. यह सहानुभूति भी वसुधा के लिए असह्य है—**'अखरता है सदा—ऐसा ही होना बार-बार जगह-जगह पर उसी दृश्य की आवृत्ति होना. सामने वाले का पहले स्तब्ध होना, फिर दया, करुणा, बेचारगी की टोकरी उसके सिर पर औंधा कर देना.'**

भाई अखबार में शादी के लिए विज्ञापन देता है. कुछ लोग आते हैं पर रुचते नहीं. दरअसल भीतर कोई इच्छा भी नहीं है. इसी दौरान मिलते हैं प्रोफेसर विवेक. चिर कुंआरे. यौवन के पहले चरण में एक ईसाई युवती शिरीन से प्रेम करते थे. उसने गर्भ धारण कर लिया और गर्भपात के चक्कर में जान से हाथ धोना पड़ा. हालांकि गर्भपात की उन्होंने न तो सलाह दी थी और न उसमें सहयोग, फिर भी उसकी मौत का अपराध-बोध उन्हें कचोटता रहता है. शायद अपराधबोध की ही यह कचोट है जो उन्हें किसी भी अंतिम निर्णय से हमेशा रोकती है.

वसुधा से उनकी पहली मुलाकात भाई के एक दोस्त राजीव के माध्यम से होती है. भाई ही उन्हें बुलवा लाये हैं अपने घर कि लड़की देख लें. लौटकर उनका पत्र आता है कि विवाह के **'किसी निर्णय के लिए. . .मेरे द्वार बंद हैं हमेशा के लिए. . . यह कैद मेरी अपनी चुनी हुई है. . .मुक्ति मैं नहीं चाहता, किसी भी परिस्थिति में नहीं जिस दिन चाहूंगा, अपने आपको हो क्षमा नहीं करूंगा.'**

वसुधा और विवेक की अगली मुलाकात होती है दिल्ली में अंतर्विश्व-विद्यालयीय युवा समारोह में. तीन दिन का यह समारोह दोनों को परस्पर एक दूसरे को समझने में सहायक होता है. दोनों ओर के कसे हुए तंतु खुलते हैं और दोनों अपने भीतर एक दूसरे के प्रति आकर्षण भी महसूस करने लगते हैं. वे दोनों साथ साथ फिल्म देखते हैं, घूमने जाते हैं और विवेक एक बार वसुधा को अपने घर भी ले जाता है.

कुछ महीने बाद वसुधा दुबारा दिल्ली आती है. इस बार एक सेमिनार के सिलसिले में. इस बार दोनों के मन में है कि कुछ तय हो जाना चाहिए. पर इस निर्णय के अंतिम बिंदु पर आकर विवेक पलायन कर जाते हैं. वह भागकर अंबाला अपनी दीदी के पास चले जाते हैं.

इस सबसे आहत वसुधा एक दूसरे पलायन की ओर प्रवृत्त होती है. वह दक्षिण भारत की यात्रा पर अकेली निकल पड़ती है. कन्याकुमारी का तीन ओर फैला विराट सागर भी उसे कोई राहत नहीं दे पाता. ऊटी भी उसे मोह नहीं पाता. यहां भी वह महसूस कर रही है : **'पहाड़ी प्रदेश में इस तरह के अकेलेपन को मैं जैसे पहली बार जान रही हूं. यह अकेलापन उतना नहीं जितना दो-पन का अभाव. हर स्थल पर भाव-बावरे जोड़ों को साथ-साथ घूमते देखते होने का दृश्य, इस अकेलेपन को बड़ा फिजिकल-सा बना देता है. . . यहां का एकांत उतना आत्मतुष्ट नहीं. न तो वह अपने को अपने में स्थित करता है, न वातावरण में घुलने देता है.'**

इसी भटकन के दौरान मुलाकात होती है आनंद से. आनंद प्रकाश कपूर, डिविजन मैनेजर माइको वाश कंपनी, बंगलौर. मुलाकात भी बड़ी विचित्र स्थिति में होती है. ऊटी मैसूर मार्ग पर बंदीपुर अभयारण्य में. वहां वसुधा को फूड-प्वाइजनिंग हो जाता है और उसकी तीमारदारी का भार बंदीपुर

---

**▣ तत्-सम : राजी सेठ, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.; 8 नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-2, पृष्ठ संख्या : 256, मूल्य : 35 रुपये.**

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गेस्ट हाउस में टिके आनंद पर आ जाता है. वे ही उसे मैसूर लाते हैं. अपनी जीप पर, अस्पताल में भर्ती करवाते हैं. पूरी देख-रेख करते हैं.

यह सहानुभूति वसुधा के स्वस्थ होने के साथ-साथ आकर्षण में बदलती चली जाती है.

ऐसा नहीं कि आनंद का कोई अतीत नहीं है. उनकी एक प्रेमिका थी निम्मी. आनंद मनेजमेंट की उच्चशिक्षा के लिए अमरीका गये तो निम्मी के मन में उन्हें लेकर शक की दीवारें खड़ी होने लगीं और उनके लौटने से पहले ही निम्मी ने किसी और से शादी कर ली. उस घटना ने आनंद के मन में नारी जाति के प्रति एक उपेक्षा का भाव भर दिया.

पर एक मूल अंतर है विवेक और आनंद के स्वभाव में. विवेक के लिए अपना दुख और अपनी परेशानियां ही प्रमुख हैं. वह एक हद तक आत्मकेंद्रित है. वसुधा के साथ बातचीत का हर प्रकरण घूम-फिरकर शिरीन और उसकी मौत की ओर ही जाता है. विवेक के सामने वसुधा की स्थिति श्रोता की होती है. जबकि इसके विपरीत आनंद ने अपने लिए बाहर के दरवाजे बंद नहीं किये हैं. विवेक के साथ डायलाग संभव नहीं हैं, आनंद के साथ संभव हैं. उसमें अपनी बात कहने की कोई हठ नहीं है. वह दूसरे की बात को सुनता और ग्रहण करता है. वह चीजों को रहस्य बनाने में नहीं बल्कि उन्हें अधिक स्पष्ट करने में विश्वास करता है. इसीलिए जब विवेक और आनंद के बीच चुनाव का प्रश्न सामने आता है तो आनंद को चुनने में किसी तरह का संकोच वसुधा को महसूस नहीं होता. बल्कि यों कहें कि विवेक जब अपनी उम्मीदवारी अपने पत्र के जरिये जाहिर करता है, तब तक वसुधा निर्णय ले चुकी होती है.

लेकिन उपन्यास का एक पक्ष और भी है. . .एक सवाल. हमारे भारतीय समाज में विवाह नाम की संस्था में पुरुष और स्त्री का पद बराबर क्यों नहीं है? पति की मौत क्यों पत्नी के पूरे अस्तित्व के ही सामने एक प्रश्नचिह्न लगा देती है? जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है. सोचने, समझने और अपने बारे में निर्णय लेने की पूरी क्षमता उसके पास है तब भी पति का अभाव क्यों उसे स्वतंत्र सामाजिक स्वीकार नहीं दे पाता? किसी पुरुष का संरक्षण क्यों उसके लिए आवश्यक माना जाता है? इसके विपरीत एक पुरुष कैसे अपने बौद्धिकता के आवरण में अपनी पत्नी से अलग रहते हुए भी समाज में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाये रहता है और इस बात की छूट भी ले लेता है कि किसी स्त्री के सामने अपनी रखैल बनाने का प्रस्ताव बड़ी धृष्टता से रख सके. □

# व्यक्ति के आसपास की कहानियां

▣ डॉ. राधेश्याम वर्मा

'कैसे-कैसे मंजर' प्रेमचंद सहज-वाला का दूसरा कहानी संग्रह है जिसमें उनकी आठ कहानियां संग्रहीत हैं. इसमें संकलित रचनाओं में लेखक ने अपने व्यक्तिगत को आस-पास के जीवन से कुछ इस तरह जोड़ा है कि वह व्यक्तिगत अनुभव की संकीर्णता से निकल कहानियों में जीवंतता का समावेश कर देता है.

कैसे-कैसे मंजर और टुकड़े-टुकड़े आकाश कहानियों में मध्य-वर्गीय परिवार आर्थिक विषमताओं में जकड़े होने के कारण लड़कियों के विवाह के लिए दहेज जुटाने में असमर्थ हैं. पहली कहानी के माता-पिता 'एक के बाद एक बड़ी होती चार लड़कियों की सडांध में सड़ते' इस दुनिया से चल बसते हैं. लड़कियों को बोझ समझने वाले रूढ़िग्रस्त समाज की संकुचित दृष्टि उन पर तरह-तरह से गिरती है. पुष्पा, सबसे बड़ी होने के कारण बहनों के भविष्य के लिए माता-पिता का दायित्व संभाल, स्वयं को घर की चारदीवारी तक सीमित कर लेती है. किंतु कृष्ण भैया की शादी के बाद घर में आयीं भाभी, किसी भी स्तर पर उनसे नहीं जुड़ पातीं. जबकि टुकड़े-टुकड़े आकाश का पिता लड़कियों के विवाह के लिए अनेक व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करता है और बातचीत टूटने पर प्रत्येक पर 'क्लोज्ड' लिखकर अपने दुःख को बढ़ाता जाता है.

प्रतीक्षा, अंधेरे से परे, असंतुलित कहानियां आर्थिक दबाव से विवश मनुष्य की परिवर्तित होती मानसिक स्थिति को चित्रित करती हैं.

आर्थिक विषमताओं से जूझते तथा बढ़ते पारिवारिक खर्चों के कारण असंतुलित होता व्यक्ति परिवार के सदस्यों पर चिल्लाता, हाथ उठाता हुआ, तनावपूर्ण परिवेश में जीवन व्यतीत करता है.

'जिल्लतें' ऐसे युवक की कथा है जो अनेक स्थानों पर अपमानित होने के बावजूद आर्थिक रूप से जर्जर परिवार के बोझ को अपने कंधों पर ढोता हुआ, तन-मन से टूटने के उपरांत भी परिवार के सदस्यों को टूटने से बचाने की चेष्टा में कार्यशील रहता है.

कितना सुख व्यक्तिगत भूमिका पर रचित रचना है. जिसमें एक सरकारी अधिकारी समाप्तप्रायः कर्त्तव्यपरायणता के आदर्श की प्रतिष्ठा करता है, जो इस कहानी की उपलब्धि है. कुल मिलाकर संग्रह पठनीय है. □

▣ कैसे-कैसे मंजर: प्रेमचंद सहजवाला, प्रकाशक : राजधानी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या: 96, मूल्य : 20 रुपये.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# बहो व्यंग्यधारा

हास्य-व्यंग्य की अविरल धारा को गति देते हुए कलकत्ता के नवयुवकों की एक साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'चिरंतन' ने पिछले दिनों कलकत्ता के 'महाजाति सदन' में एक साहित्यिक कार्यक्रम 'बहो व्यंग्यधारा' आयोजित किया, जिसमें देश के लब्ध प्रतिष्ठित कवियों एवं गद्यकारों ने भाग लिया. कार्यक्रम की अध्यक्षता विख्यात साहित्यकार एवं भाषाविद् डॉ. प्रभाकर माचवे ने की. संचालन इंदौर के प्रसिद्ध कवि श्री सरोज कुमार ने किया. भाग लेने वालों में थे—सर्वश्री शरद जोशी (बंबई), के. पी. सक्सेना (लखनऊ), अशोक चक्रधर (दिल्ली), प्रदीप चौबे (ग्वालियर) तथा ओमप्रकाश आदित्य (दिल्ली). जहां एक ओर रचनाकारों की रचनाओं ने श्रोताओं को बांधे रखा, वहीं दूसरी ओर श्री सरोजकुमार के कुशल संचालन ने और अधिक मनोरंजकता पैदा की.

▣ संदीप सक्सेना

# पत्रकारिता का इतिहास

▣ शैलेंद्र सुमन

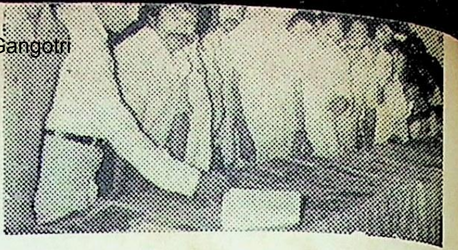

भारत-नेपाल सीमा स्थित अंतरराष्ट्रीय शहर रक्सौल में पिछले दिनों 'दिनमान' संपादक श्री कन्हैयालाल नंदन का सांस्कृतिक मंच 'दर्पण' एवं प्रेस-क्लब, रक्सौल द्वारा हार्दिक स्वागत किया गया. अपने नेपाल-यात्रा के क्रम में यहां पहुंचने के तुरंत बाद स्थानीय हजारीमल उच्च विद्यालय के प्रांगण में 'दर्पण' द्वारा आयोजित 'चित्रकला एवं पत्रिका' प्रदर्शनी का अवलोकन करने के पश्चात उन्होंने कहा कि 'दर्पण' ने इस प्रदर्शनी का आयोजन कर संस्कृति के उस सशक्त पहलू को पकड़ा है, जो सौंदर्य-चेतना से जुड़ा हुआ है.

प्रदर्शनी में शामिल पत्र-पत्रिकाओं की तादाद, विविधता एवं सुरुचिपूर्ण संग्रह के लिए श्री नंदन ने इस प्रदर्शनी के संयोजक श्री शैलेंद्र सुमन को अनौपचारिक रूप से बधाई दी. प्रदर्शनी में लगे चित्रों को देखकर चित्रकारी के अपने संस्मरण सुनाते हुए उन्होंने कहा कि इन चित्रों को देखकर लगता है इनमें संघर्ष-चेतना विद्यमान है, जो किसी भी कला के लिए नियामक तत्व है. ▣

# अरे शरीफ लोग

पिछले तीन वर्षों में प्रोफेसर रामावतार चेतन को संचेतना और स्वेद की सोंधी खुशबू में कई-कई बार डूबते देखा है. 1981 में 'कौआ चला हंस की चाल.' 1982 में 'रानी नागफनी की कहानी' और अब इस वर्ष 'अरे शरीफ लोग' दर्शकों के लिए आत्म संस्कार के महोत्सव तो साबित हुए ही हैं, रंगकर्मियों के लिए भी सोच के बंधे दायरे से बाहर निकलने के लिए निष्कृति द्वार साबित हुए हैं. बंबई में हिंदी रंगमंच के लिए उर्वर भूमि तैयार करने के उद्देश्य से 'रंगायन' ने राष्ट्रीय संगीत नाट्य केंद्र के भव्य प्रेक्षागृह टाटा थिएटर में मराठी के लोकप्रिय व्यंग्यकार श्री जयवंत दलवी के प्रसिद्ध मराठी नाटक 'सभ्य गृहस्थ हो' के हिंदी रूपांतर 'अरे शरीफ लोग' (रूपांतरकार: डॉ. विजय बापट) का मंचन प्रस्तुत कर 'हास्यरंग महोत्सव' की तृतीय वार्षिक श्रृंखला का सूत्रपात किया.

'रंगायन' के इस नाटक का कथानक सनातन है. कुछ शरीफ लोग हैं, घरों में उन पर निगरानी रखती और संदेह करती सतत शाश्वत बीवियां हैं. और उस चाल में, प्राणों में हलचल मचाने के लिए आयी नयी नवेली चंदा है और निःसंदेह इन शरीफ लोगों का एक मकान मालिक भी है. चंदाजी मकान मालिक बन जाती हैं और प्रेमपत्रों के बदले शरीफ लोगों की चाल में सुधार की फरमाइशें उनके सीने में दर्ज हो जाती हैं.

जयवंत दलवी मराठी के प्रसिद्ध नाटककार हैं और उनका नाटक किसी आलोचना की गुंजाइश नहीं छोड़ता. रेनू बरून होरा का निर्देशन चरित्रों को जीवंत और नाटकीय प्रारूपों को सहज मानवीय बनाने में सहायक रहा. 'अति' ऐसे चरित्रों की जान हुआ करता है, लेकिन निर्देशिका की गहरी पकड़ ने यथार्थ का आभास निरंतर बनाये रखा.

▣ सुभाष मिश्रा

# चौथाई भरा गिलास

गजानन माधव मुक्तिबोध व्याख्यान माला के तहत 'वाणी पर बंधन' विषय पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए प्रख्यात लेखक तथा नवभारत टाइम्स (बंबई) के समाचार संपादक श्री विश्वनाथ ने कहा कि वाणी की स्वतंत्रता का रिश्ता मनुष्य के सोचने-समझने की क्षमता-शक्ति है. मनुष्य-मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा तभी संभव है, जब हम अपने सोच को दूसरों तक पहुंचाने का प्रयास करें. मनुष्य सोच सकता है, इसलिए हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए. समाचार ग्रहण करने का निर्बाध अधिकार भी मिलना चाहिए.

श्री विश्वनाथ ने कहा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बंधन सरकार ही नहीं, समाज भी लगाता है. सरकार चाहती है कि हम एक चौथाई गिलास भरा कहें. तीन-चौथाई गिलास खाली नहीं कहें. व्याख्यान माला की अध्यक्षता चिकित्सा महाविद्यालय के भूतपूर्व अधिष्ठाता तथा प्रख्यात शल्य चिकित्सक डॉ. विक्रम मारवाह ने की. श्री हरीश अड्यालकर ने आभार व्यक्त किया. ▣

▣ प्रताप अंसारी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

She doesn't remember seeing the sun rise, her mother's smile or even her own face. For her life now has only one colour. Black.

Priya lost her sight a decade ago. And as she grew up, she began to recognise the injustice of her handicap. She couldn't go to a regular school like others of her age. She couldn't play like other kids. She couldn't read. She couldn't see the flowers bloom. The colours in her dress. The laughter in her friends' eyes.

All she can do is cry. And each tear she sheds is a mirror of her own pain...fear...and loneliness.

But Priya's case is not without hope. Her blindness, like that of many others, is not without cure. There is a remedy that's simple, doesn't cost anything and is effective. Only it needs you.

A simple cornea transplant can restore her sight. The useless cornea, replaced by a healthy one. And the healthy one could be yours.

Eye removal leaves no scar or disfigurement. And once you've pledged to donate, you'll live with the gratifying emotion that your eyes will live much longer than you. And that some blind person will see... through them.

If your heart goes out to the blind during your lifetime, let your eyes go out to them after death. It's the most precious gift you can give them.

To know more about eye donation, and what kinds of blindness can be cured, send us the coupon for a detailed brochure.

Do it today. Remember, miracles can't cure the blind. You can.

**I would like to know more about eye donation and cornea grafting. Send me a detailed brochure.**
**(Kindly fill in block letters)**

Name: Mr./Ms. ____________

Address: ____________

____________

State: ____________

Pincode: ____________

Age: ____________

SIGHT

TIMES EYE RESEARCH FOUNDATION
7, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110 002

everest/d83/TERF/215

# Sight. A gift only you can give.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar